विज्ञान आर सभ्यता

लेखक-परिचय

रामचन्द्र तिवारी का जन्म १९ मार्च १९१० को उत्तर प्रदेश के प्रतापगढ़ जिले में समदरिया-दुबे-का-पुरवा नामक गाँव में हुआ। उनका बाल्यकाल मेरठ, बुलन्दशहर और प्रतापगढ़ के देहात में बीता। माध्यमिक शिक्षा उन्होंने प्रेम महाविद्यालय, वृन्दावन और उच्च शिक्षा दिल्ली के हिन्दू कालिज में प्राप्त की। पिछले पच्चीस वर्षों से तिवारीजी का सम्पर्क वैज्ञानिक गवेषणा से रहा है। व्यवसाय से वे रसायनज्ञ हैं। लगभग बीस वर्ष विज्ञानशाला में व्यतीत करने के बाद आजकल वे वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद् के प्रकाशन-विभाग में वैल्थ ऑफ़ इंडिया (भारतीय सम्पत्ति) की तैयारी और 'विज्ञान प्रगति' के सम्पादन से सम्बन्धित हैं।
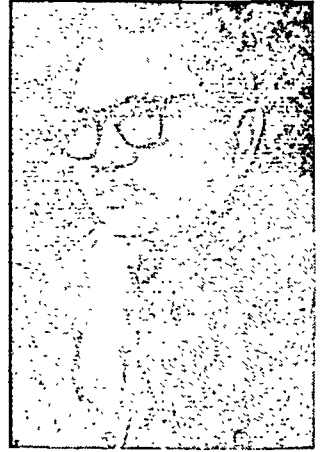
तिवारीजी का साहित्यिक जीवन कवि, निबन्ध-लेखक और आलोचक के रूप में आरम्भ हुआ। १९४० के आसपास से उन्होंने कहानियाँ और उपन्यास लिखना आरम्भ किया। वे एक लब्धप्रतिष्ठ रेडियो-नाटक निर्माता और प्रसारक भी हैं। सरस साहित्य में वैज्ञानिक दृष्टिकोण और वैज्ञानिक साहित्य में मनोरमता उनकी विशिष्टता है।

सिद्धि तिवारी आपकी धर्म-पत्नी और सहलेखिका हैं।

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-६

विज्ञान और सभ्यता

(सचित्र)

लेखक

रामचन्द्र तिवारी

सिद्धि तिवारी

१९५६

आत्माराम एण्ड संस

प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

काश्मीरी गेट

दिल्ली-६

मूल्य पाँच रुपये

प्रकाशक
रामलाल पुरी
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

मुद्रक
उग्रसेन दिगम्बर
इण्डिया प्रिंटर्स
एसप्लेनेड रोड, दिल्ली-६

पुस्तक के विषय में

विज्ञान का अर्थ है विशेष ज्ञान। ज्ञान अर्थात् जानकारी। मनुष्य ने अपनी परिस्थितियों को जाना, समझा, बूझा और उनका उपयोग अपने जीवन को सुविधापूर्ण बनाने के लिए किया। जीवन को सुविधापूर्ण बनाने के लिए उसने जो कलायें और कलें बनाई हैं, वे ही उसकी सभ्यता का दृश्य रूप हैं। मनुष्य की सभ्यता विज्ञान में से अंकुरित हुई है, ज्यों-ज्यों विज्ञान उन्नत हुआ है वह बढ़ी और विकसी है।

मनुष्य ने खेती करना, अब से लगभग १०-१२ हजार वर्ष पूर्व सीखा। गाँव में अधिकतर लोग किसान होते थे। पर अभी कुछ वर्ष पहले तक जब अकाल पड़ता था तो गाँव में कुछ लोग भूखे मर जाते थे। जिनके पास अन्न होता था वे अपने परिचितों को भी उसे देने को तैयार न होते थे। कारण यह था कि आत्म-रक्षा सबसे पहले थी। यदि अन्न दूसरों को दे देंगे, तो स्वयं क्या करेंगे? ऐसी आशा नहीं थी कि कहीं बाहिर से सहायता पहुँच जायेगी, पर आज जैसे समय बदला हुआ है। मनुष्य धरती से अधिक अन्न उपजाना जानता है। वह उसे सात समुद्र पार कहीं का कहीं पहुँचाना भी जानता है। आज भूखे की सहायता के लिए उसका गाँव और देश ही नहीं, विदेश भी अन्न भेजते हैं।

कहते हैं कि मनुष्य मनुष्य में समानता आज पहले से अधिक है। उसके अधिकार पहले से अधिक सुरक्षित हैं। वह पहले से अधिक स्वतन्त्र है। पाशवी शक्ति का अधिकार काफी घटा हुआ प्रतीत होता है और मानवता का क्षेत्र काफी आगे बढ़ गया है। यह इसलिए कि विज्ञान के अविष्कारों ने वे काम सम्भव बना दिये हैं जो कुछ दिन पहले असम्भव माने जाते थे। जिन कलाओं का फल कुछ लोगों तक ही सीमित था उनसे अब करोड़ों जन लाभान्वित होते हैं। इस प्रकार विज्ञान का विकास वास्तव में मनुष्यता का विकास सिद्ध हुआ है।

विज्ञान की कहानी मनुष्य की सभ्यता की कहानी है। अपनी सभ्यता की आत्मा को समझने के लिए विज्ञान के विकास से परिचित होना आवश्यक है। जिस प्रकार मनुष्य की सभ्यता के अनेक पहलू हैं उसी प्रकार विज्ञान के भी अनेक क्षेत्र हैं। इस पुस्तक में विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों पर संक्षेप में प्रकाश डाला गया है और उन सभी प्रमुख आविष्कारों के विकास की चर्चा की गई है, जिन्होंने मनुष्य की दुनिया में नये-नये द्वार खोले हैं और उसे एक ऐसे स्थान पर लाकर खड़ा कर दिया है जहाँ से सम्पूर्ण विनाश और अभूतपूर्व सुख सुविधा, दोनों केवल एक डग की दूरी पर हैं।

मनुष्य का यह डग किस ओर उठेगा, इसका निर्णय प्रत्येक व्यक्ति को करना है। हमारी विनम्र आशा है कि यह पुस्तक पाठकों को इस निर्णय पर पहुँचने में सहायता देगी; और, उनके विचारों के लिए वह पृष्ठभूमि तैयार करेगी जिससे वे देश में होने वाले व्यापक रचनात्मक कार्यों में सच्ची रुचि ले सकेंगे और अपनी पूर्ण शक्ति तथा समझ से उनमें योगदान दे सकेंगे।

सिद्धि तिवारी
रामचन्द्र तिवारी

विषय-सूची

अध्याय १

विज्ञान का विकास

[१-५]

अध्याय २

आकाश और पृथ्वी

[६-११]

अध्याय ३

पृथ्वी और प्राणी

[१२-१६]

अध्याय ४

वन, बगीचे और खेत

[१७-२६]

अध्याय १३

कोयला और तेल

अध्याय १४

वायु-यात्रा

अध्याय १५

समाचार-संचरण

अध्याय १६

भारतीय उपज और विदेशी व्यापार

विज्ञान और सभ्यता

अध्याय १

विज्ञान का विकास

१. वनमानुष—वनमानुष वृक्ष पर रहता था। वृक्ष से नीचे उतरा तो वह मनुष्य बना और गुफ़ाओं में निवास करने लगा। मनुष्य के पास न गैंडे की सी मोटी खाल थी, न सिंह के से नख-दाँत थे। वह न हाथी के समान बलशाली था और न हिरन के समान गतिवान। फिर भी उसके पास दो विशेषताएँ थीं जो अन्य किसी जन्तु के पास नहीं थीं। उसके पास, उसके शरीर के भार को ध्यान में रखते हुए, जितना मस्तिष्क-पदार्थ था, उतना किसी अन्य जन्तु के पास नहीं था। उसके पास दो हाथ थे। उसने अपने शरीर को ऐसा साध लिया था कि पंखों का अभाव होते हुए भी वह अपने दो ही पैरों पर दौड़ने-भागने उछलने-कूदने के सब करतब कर सकता था। मनुष्य ही अकेला जन्तु है जो केवल दो पैरों पर चलता है। पक्षियों के पैरों को सदा उनके पंखों का सहारा मिलता रहता है।

मनुष्य के मस्तिष्क और उसके हाथ ने इस ग्रह के धरातल पर बड़े गहरे परिवतन किये हैं। वे परिवर्तन रुके नहीं हैं, आगे बढ़ते जा रहे हैं।

२. ज्ञान-संचय—मनुष्य गुफ़ा में आया तो उसके सामने जीवन की वे सभी समस्यायें थीं जो आज हमारे सामने हैं। उसने देखा, सोचा, ज्ञान प्राप्त किया और उसका उपयोग किया। उसके ज्ञान का विकास ही उसके विज्ञान का विकास है।

मनुष्य ने लकड़ी की कठोरता अनुभव की, और लकड़ी को तोड़ना जाना, तो लाठी बनायी। पत्थर का फेंकना समझा तो गोफिया बनाया। डालियों की लचक उसकी समझ में आई तो धनुष बने और एक दिन किसी आदि वैज्ञानिक ने वन में लगी अग्नि के विषय में सोचा और दो लकड़ियों को घिसकर स्वयं अग्नि उत्पन्न करने के यत्न में सफलता प्राप्त की, तो आग मनुष्य के वश में आ गई। उसका भोजन पकने लगा, शीत और वन्यशत्रु उससे दूर रहने लगे और कुछ समय पश्चात् अग्नि की सहायता से उसे धातुओं के विषय में कुछ ज्ञान प्राप्त हो गया। मनुष्य ने पत्थर के हथियार पीछे छोड़ दिये। वह तांबे-लोहे के हथियारों पर आ गया। मनुष्य ने इस प्रकार अनेकों वस्तुओं के विषय में जाना और उनका उपयोग किया। उसने वनस्पतियों के गुण जाने और औषधियाँ बन गयीं। उसने सूर्य, चन्द्र तथा अन्य ग्रहों की गतियों का अध्ययन किया तो ज्योतिषशास्त्र

उसने बस्तियाँ बनाईं और समाज में एक व्यवस्था का आविर्भाव हुआ। जब लेन-देन की बात आयी, तो नाप-तोल आरम्भ हुआ और गणित को जन्म मिला। उसने अपने वातावरण में, आकाश-पृथ्वी पर अनेकों घटनायें देखी। उसने उन्हें समझने का प्रयत्न किया, उनका भेद जानना चाहा। जब रहस्य सरलता से हाथ न आया तो उसने कल्पना की और दर्शन शास्त्र का विकास हुआ।

३. धर्म—मनुष्य का यह सब ज्ञान उसके जीवन यापन में व्यवस्था और सुविधा लाता था, इसलिए वह धर्म का अंग बन गया। प्रत्येक देश और जाति ने इस सामूहिक ज्ञान में योग दिया। भारतवर्ष का योग ज्योतिष, गणित, दर्शन, चिकित्सा, रसायन आदि अनेक क्षेत्रों में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। पर यह लगभग डेढ़ सहस्र वर्ष पुरानी बात है।

विज्ञान धर्म का अंग बन गया। उस समय तक मनुष्य का जो ज्ञान था वह विश्वास में परिवर्तित हो गया। विज्ञान पीढ़ी के पश्चात् पीढ़ी के अनुभव से निरन्तर बढ़ता रहा था। अब वह जैसे जड़ हो गया था। अनुभव द्वारा अशुद्ध सिद्ध हो जाने पर भी परम्परा से चले आते हुए विश्वासों की अवज्ञा जनसाधारण नहीं कर सकता था। वह संगठित धर्म या मठाधीशों की शक्ति से भयभीत था। अवस्था यह आ गई कि यदि विज्ञान को उन्नति करनी है तो उसे मठाधिकारियों के चंगुल से मुक्ति पानी होगी। धर्म से ज्ञान को मुक्त करने का काम यूरोप में आगे बढ़ा।

४. धर्म से मुक्ति—प्राचीन धर्म का विश्वास था कि हमारी पृथ्वी ब्रह्माण्ड का केन्द्र है और सूर्य दिन-रात बनाने के लिए निरन्तर पृथ्वी की परिक्रमा करता रहता है। यह विश्वास ज्योतिषियों के निरीक्षण के विरुद्ध पड़ता था। कुछ विद्वानों ने साहस किया और मठाधिकारियों से अपने मतभेद को जनता में प्रकट किया। धर्म ने अपनी शक्ति प्रदर्शित की। अनेकों मनुष्यों को जीवित जलाने का दण्ड दिया गया और दूरबीन के आविष्कर्ता गैलीलियो को कारावास से दण्डित किया गया। और तो और लोगों ने दूरबीन को आँखों से लगाकर आकाश को निरखना स्वीकार न किया। क्या पता उस नली में शैतान घुसा हो जो उससे आँख लगाते ही उन्हें धर्म से गिरादे। विज्ञान ने मठ से मुक्त होने के लिए संघर्ष किया। सत्य के अन्वेषकों ने बलि दी और विज्ञान मुक्त हो गया।

धर्म से मुक्त होने पर विज्ञान को पूर्ण मुक्ति नहीं मिली। अब वह स्वयं अपना ही कैदी बन गया। यह वह मध्यकालीन युग था जब सामंतगण वैज्ञानिकों को आश्रय देते थे। वैज्ञानिक या रसायन शास्त्री उनके लिए अमरता प्रदायिनी औषधि की खोज करते थे और पारे तथा तांबे से सोना बनाने का जतन करते थे। विषैली गैसों और अँधेरी प्रयोगशालाओं में इन वैज्ञानिकों के जीवन का अन्त होता रहा, पर न अमृत मिला और न पारस पथरी ही हाथ आयी। वैज्ञानिकों को अपनी इन खोजों की व्यर्थता दिखाई पड़ने लगी।

५. ज्ञान के लिए ज्ञान—विज्ञान को धर्म-बन्धन से मुक्ति मिली तो बहुत से लोगों

की उत्सुकता विज्ञान के प्रति जागी। पाठशालाओं के शिक्षकों ने इसकी ओर ध्यान दिया। दवाइयाँ बेचने वालों ने विज्ञान की सहायता से अच्छी और नयी औषधियाँ बनाने के प्रयत्न आरम्भ किये। सेनापतियों ने युद्ध में विज्ञान की सहायता चाही और नाविकों ने समुद्र-यात्रा को अधिकाधिक सुरक्षित बनाने के लिए विज्ञान की शरण ली। योरोपीय जीवन में विज्ञान के प्रति एक उत्सुकता फैल गयी। इसी समय विज्ञान के क्षेत्र में एक नवीन दृष्टिकोण का प्रवेश हुआ।

६. नाप-तोल—विज्ञान के तुरन्त उपयोग में ले आने की बात वैज्ञानिकों ने पीछे डाल दी। बल दिया जाने लगा ज्ञान के लिए ज्ञान प्राप्त करने पर; प्रकृति के रहस्यों को खोजकर मनुष्य की दार्शनिक उत्सुकता शान्त करने पर। अब तक का जितना विज्ञान मनुष्य के पास था वह प्रायः सब गुणात्मक था। मनुष्य ने मोटे तौर से भिन्न-भिन्न वस्तुओं के विषय में जाना था, पदार्थ के निर्माण के विषय में कल्पनाएँ की थीं। पर इस विषय में न कुछ परीक्षण किये थे और न विभिन्न वस्तुओं को बारीकी से नाप-तोल कर उनका परिमाण निश्चित किया था। अब कसौटी बनी कि सिद्धान्त सच्चा वही, जो परीक्षण करने पर सत्य उतरे। और परीक्षण में पूरी नाप-तोल से काम लिया जाये। नापने-तोलने की ओर मनुष्य का ध्यान तब से हटा नहीं। आज जो विज्ञान की इतनी उन्नति दिखाई दे रही है इसका प्रमुख करण उसका ठीक-ठीक नाप-तोल और परीक्षण पर आधारित होना है। आज विज्ञान की नापने-तोलने की सामर्थ्य इतनी बढ़ गयी है कि जन-साधारण को यकायक उस पर विश्वास नहीं होता। मनुष्य जिस सबसे छोटी लम्बाई को नापने में समर्थ हुआ है वह एक इंच का तीन अरबवाँ भाग है। बिजली उद्योग में वह धातु की ऐसी पत्तरों को काम में लाता है, जिनकी मोटाई एक इंच का लाखवाँ भाग है। वह लम्बाई की जिस इकाई का उपयोग करता है वह एक इंच का ढाई खरबवाँ भाग है और एक 'मिली एंग्स्ट्रम' कहलाता है। बड़ी-बड़ी लम्बाइयाँ भी उसने नापी हैं, वह आज जानता है कि ध्रुवतारा पृथ्वी से लगभग ७३५ खरब मील दूर है। तोलने में भी मनुष्य ने इसी प्रकार उन्नति की है। किसी भी अच्छी प्रयोगशाला में ऐसी तराजू मिल सकती है जो एक माशे का दस लाखवाँ भाग सही-सही तोल सके। आज इस दिशा में मनुष्य इतना समर्थ है कि उसने पदार्थ के परमाणुओं में स्थित प्रोटोन के भार का भी पता लगा लिया है यह एक ग्राम का (जो लगभग एक माशे के बराबर होता है) लगभग पाँच हजार शंखवाँ भाग है। इलेक्ट्रन प्रोटोन से लगभग दो सहस्र गुना हल्का होता है। परीक्षण और नाप-तोल से अनेक समस्यायें उत्पन्न हुईं और उनका समाधान करने के लिए गणित ने उन्नति की। यह विज्ञान सहस्रों वैज्ञानिकों के योग से निर्मित हुआ है और प्रत्येक नवीन वैज्ञानिक ने पूर्व-प्राप्त ज्ञान को अपने नवीन अध्ययन और अनुसन्धान का आधार बनाया है।

७. मनुष्य की शक्ति सीमा—विशुद्ध विज्ञान के अन्वेषकों के पास ज्यों ज्यों

सूचनायें एकत्र होती जाती थीं वे प्रकाशित करदी जाती थीं। सब प्रकार के व्यवसायी उन
यथासम्भव लाभ उठाने की चेष्टा करते थे। इस चेष्टा के फलस्वरूप औषधि-निर्माण औ
धातु विज्ञान ने काफ़ी उन्नति की। भाप की शक्ति का आविष्कार हुआ। इंजन बने। इंज
का उपयोग रेल, जलपोत तथा दूसरे कारखानों को चलाने में किया जाने लगा। बहु
सी वस्तुएँ बड़े परिमाण में और सस्ती बनने लगीं। मशीनें अधिक काम कर सकती थ
इसलिए मनुष्यों की बड़ी संख्या बेकार हो गई। यह एक ऐसी समस्या है जिसका व्यव
हारिक हल अभी तक मनुष्य नहीं प्राप्त कर पाया है।

८. विज्ञान का उपयोग—भाप आयी, उसके पश्चात् मनुष्य को तेल के सो
में रुचि हुई, शीघ्र ही पेट्रोल से चलने वाले इंजन बन गये। मोटरगाड़ियों का उद्यो
स्थापित हो गया। जब कोयला-भाप और पेट्रोल-तेल के इंजन काम कर रहे थे, उससे
पहिले से कुछ वैज्ञानिक बिजली के गुणों और उसके पैदा करने की समस्याओं का अध्यय
कर रहे थे। शीघ्र ही उसमें भी सफलता प्राप्त हो गयी और बिजली मनुष्य के द्वारा उ
युक्त महत्त्वपूर्ण शक्ति बन गयी। इस काल में विज्ञान ने प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति की
प्राणि-शास्त्र की नींव पड़ी। विकासवाद का सिद्धान्त सामने आया। मनुष्य का कीटाणु
से परिचय हुआ और कीटाणु-नाशकों का निर्माण किया गया। सुन्नताकारियों
आविष्कार हुआ और शल्य-क्रिया ने अत्यन्त उन्नति की। कारखानों में भाँति-भाँति
रंग और विस्फोटक बनने लगे। फोटोग्राफ़ी प्रारम्भ हुई। समाचार तारों पर दौड़
लगे। पनडुब्बियाँ बनीं। वायुयान उड़े और रेडियो द्वारा संगीत प्रसारित किया जाने लगा

हमने देखा कि आरम्भ में वैज्ञानिक सामन्तों के आश्रय रहते थे। उसके पश्चा
विज्ञान-प्रेम, ज्ञान के लिए ज्ञान का लक्ष्य लेकर पाठशालाओं और विश्वविद्यालयों में
गया। विज्ञान के अध्ययन के लिए कुछ स्वतन्त्र संस्थाएँ भी बनीं। इन स्थानों
सैद्धान्तिक विज्ञान ने पर्याप्त उन्नति की और वह एक दृढ़ नींव पर स्थापित हुआ। ज
विज्ञान के अनुसंधानकों द्वारा खोजा हुआ ज्ञान लाभकारी सिद्ध होने लगा, तो कुछ देश
की सरकारों और बड़े-बड़े उद्योगपतियों ने अपनी समस्याओं का हल खोजने के लि
उन पर अनुसंधान करने के लिए, वैज्ञानिकों को नौकर रखा और अनेक अनुसन्धान शाला
की नींव डाली।

९. द्वितीय महायुद्ध—द्वितीय महायुद्ध वैज्ञानिक और औद्योगिक शक्तियों का यु
था। मित्रराष्ट्र अपनी वैज्ञानिक अनुसन्धान-योग्यता और औद्योगिक क्षमता के कारण रे
और परमाणु-बम बना सके और विजयी हुए। इस युद्ध ने, और इससे उत्पन्न हुई ना
समस्याओं ने अत्यन्त पुरातन पंथी देशों और जातियों की भी आँखें खोल दीं। उ
विदित हो गया कि धरती के धरातल पर इस समय जो जीवन के लिए संघर्ष चल र
है उसमें बिना वैज्ञानिक सहायता लिये वे ठहर नहीं सकते। आज बिना पूर्ण वैज्ञा

सहायता प्राप्त कोई देश अपनी समस्याएँ हल नहीं कर सकता। अपने निवासियों के लिए भोजन, वस्त्र, मकान, औषधि आदि का प्रबन्ध नहीं कर सकता।

१०. राष्ट्रों का जागरण—सरकारों द्वारा विज्ञान की क्षमता स्वीकार किये जाने का अर्थ यह हुआ है कि सरकारें वैज्ञानिक अन्वेषणों पर अधिकाधिक धन व्यय करने लगी हैं। अनेकों राष्ट्रीय प्रयोगशालाएँ इस देश में तथा अन्य देशों में बन रही हैं। इनमें इन देशों के वैज्ञानिक अपने-अपने देशों की समस्याओं का हल खोजने का प्रयत्न कर रहे हैं। जो विज्ञान एक व्यक्ति की ज्ञान के प्रति उत्सुकता से आरम्भ हुआ था वह आज जगत्-व्यापी और अत्यन्त महत्त्ववान व्यवसाय बन गया है। संसार में लाखों विद्यार्थी प्रतिवर्ष विश्वविद्यालयों से विज्ञान की शिक्षा पाकर निकलते हैं और कारखानों, परीक्षण-ग्रहों, विश्वविद्यालयों तथा अनुसन्धानशालाओं में काम करके वर्तमान मानव-समाज की जटिल मशीन को चलाने में सहायता देते हैं।

११. मनुष्य की आशा—प्रकृति के नवीन रहस्यों की खोज और उनके उपयोग का प्रयत्न अनवरत रूप से किया जा रहा है। पिछले दस वर्षों में जो आश्चर्यजनक प्रगति इस दिशा में हुई है वह मनुष्य के इतिहास में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन लाने वाली है। पेनीसिलीन का प्रभाव हम घर-घर देखते हैं। रेडियो से जिस प्रकार शब्द प्रसारित किये जाते हैं उसी प्रकार चित्र भी प्रसारित होने लगे हैं। पश्चिमी काल में चित्र-प्रसारण साधारण-सी बात हो गई है। रैडर की सहायता से मनुष्य अनेकों सूचनाएँ चुटकी बजाने से भी पहिले प्राप्त कर लेता है। विद्युत् चुम्बकीय तरंगों—यह वही तरंगें हैं जो रेडियो से प्रसारण के काम में लायी जाती हैं—का उपयोग करके गणित करने वाली ऐसी मशीनें बनी हैं जो वर्षों के काम को घण्टों में कर देती हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण सफलता जो इस दशा में हुई है वह है, परकीणु-शक्ति पर अधिकार। उस शक्ति की सम्भावनायें कोयले और पेट्रोल से कहीं अधिक है। मनुष्य का कोयले और पेट्रोल का भण्डार समाप्त हो जाने वाला है, पर परमाणु-शक्ति का भण्डार अक्षय है। जिस समय मनुष्य परमाणु-शक्ति के भेदों को भली भाँति समझ लेगा, उस समय वह किसी भी बेकार वस्तु का उपयोग शक्ति प्राप्त करने के लिए कर सकेगा। शक्ति के स्रोत पर से सीमा हट जाने के कारण वह अत्यन्त सस्ती हो जावेगी। उस समय यदि मानव-समाज का नेतृत्व बुद्धिमान व्यक्तियों के हाथ में होगा तो सुख और समृद्धि का स्वर्ण-युग पृथ्वी पर उतर सकेगा, और संसार का निवासी प्रत्येक मनुष्य अपनी मोटी-मोटी आवश्यकताओं की सब सामग्री सरलता से प्राप्त कर सकेगा।

अध्याय २

आकाश और पृथ्वी

१२. क्षितिज—मनुष्य पृथ्वी पर खड़े होकर अपने चारों ओर देखता है, तो उसे अपने से बहुत दूर एक गोलाकार रेखा दिखाई देती है। वह देखता है कि इस रेखा पर आकाश ने चारों ओर झुककर पृथ्वी को छू लिया है। इस रेखा को क्षितिज कहते हैं। क्षितिज से नीचे पृथ्वी है और ऊपर आकाश, पर वास्तव में ऐसा है नहीं। ऐसा हमें दिखाई देता है। वास्तविकता तो यह है कि पृथ्वी आकाश में है और आकाश पृथ्वी के चारों ओर है। पृथ्वी इस विस्तृत आकाश में उड़ते हुए एक रेत के कण के समान है। पृथ्वी की रूपरेखा और लम्बाई-चौड़ाई के विषय में हमें बहुत कुछ ज्ञान है पर आकाश के विषय में हम बहुत कम जानते हैं। विशेष अधिक जानने की आशा भी नहीं कर सकते। हमारे ज्ञान-प्राप्ति के साधनों की शक्ति-सीमा है इसी से हमारे ज्ञान की भी सीमा है।

१३. आकाश का रंग—हम क्षितिज से ऊपर की ओर दृष्टि उठाते हैं तो देखते हैं आकाश, जो हमारे सिर के ऊपर होकर फिर पीठ पीछे धरती पर टिक गया है। आकाश साधारणतया नीला दिखाई देता है। क्यों? वृक्षों के पत्ते हमें हरे क्यों दिखाई देते हैं? फूल रंग-बिरंगे क्यों दिखाई देते हैं? जो वस्तु अँधेरे में होती है वह हमें दिखाई नहीं पड़ती। जो वस्तु हमें दिखती है उसका प्रकाश में होना अनिवार्य है; हम चाहे अँधेरे में भले ही हों। अँधेरे में स्थित वस्तु हमें इसलिए दिखाई नहीं देती कि उस पर प्रकाश नहीं पड़ता! प्रकाश शक्ति की तरंगें हैं जो सीधी रेखा में चलती हैं। जब प्रकाश किसी वस्तु पर पड़ता है तो उसकी किरणें उस वस्तु से टकराकर पलट पड़ती हैं, परावर्तित हो जाती हैं। वस्तु से टकराकर लौटी हुई किरणें जब हमारे नेत्रों में पहुँचती हैं, तो हमें वह वस्तु दिखाई देती है जिस स्थान से किरणें हमारे नेत्रों में नहीं पहुँचतीं वह स्थान हमें काला या अँधेरा दिखाई देता है।

१४. सूर्य का प्रकाश—आकाश हमें दिखाई देता है, इसका अर्थ यह है कि आकाश से प्रकाश की किरणें हमारे नेत्रों तक पहुँचती हैं। पर आकाश में रंग है और वह नीला है। सबने आकाश में इन्द्र-धनुष देखा है। तिकोने काँच के पार जब सूर्य की किरणें जाती हैं तो भी हमें वही सात इन्द्र-धनुषी रंग दिखाई देते हैं। ये रंग हैं—लाल, नारंगी, पीला, हरा, नीला, गम्भीर नील और बैंगनी। इसका अर्थ यह हुआ कि सूर्य का श्वेत प्रकाश ऐसी भिन्न-भिन्न प्रकाश-तरंगों के मिश्रण से बना है, जो यदि आकाश में

जलकणों, अथवा तिकोने काँच द्वारा बिलगा दी जाती है तो हमें पृथक्-पृथक् उपर्लिखित सात रंगों का बोध कराती है। जब सूर्य का प्रकाश किसी वस्तु पर पड़ता है तो उसका एक अंश उस वस्तु द्वारा सोख लिया जाता है और एक अंश परावर्तित कर दिया जाता है। वस्तु विशेष से परावर्तित किरणें हमें जिस रंग का बोध कराती हैं वही रंग, हमें, उस वस्तु का दिखाई देता है। हरे पत्तों से हरे रंग का बोध कराने वाली किरणें हमारे नयनों तक पहुँचती हैं। लाल फूल से लाल रंग का बोध कराने वाली तरंगें हमारे नयनों तक पहुँचती हैं। आकाश से जो तरंगें हमारी आँखों तक पहुँचती हैं वे हमें नीले रंग का बोध कराती हैं, इसलिए आकाश हमें नीला दिखाई देता है। शेष रंगों की तरंगें आकाश की गहराइयों में सोख ली जाती हैं, वे हमारे पास तक नहीं पहुँचतीं।

१५. आकाशीय पिण्ड—आकाश कोई पदार्थ नहीं है। वह स्थान मात्र है। उस स्थान की सीमा कहाँ है? किस ओर कितनी दूर है? इन प्रश्नों का निश्चित उत्तर न हमें आज ज्ञात है न भविष्य में ज्ञात होने की आशा की जाती है। आकाश कहलाने वाले इस विशाल स्थान में हमें अनेक आकाशीय पिण्ड दिखाई देते हैं। हमारा उनका सम्बन्ध प्रकाश द्वारा होता है। उनसे चलकर प्रकाश की तरंगें हमारे नेत्रों तक पहुँचती हैं तो हमें मालूम हो जाता है कि वे हैं। रात्रि में हमें अगणित आकाशपिण्ड दिखाई देते हैं। इनमें सबसे बड़ा हमें चन्द्रमा दिखाई देता है और शेष तारे कहलाते हैं। दिन में हमें एक ही आकाशीय पिण्ड दिखाई देता है, वही जिसके कारण दिन होता है। दिन में सूर्य निकल आता है तो इसका अर्थ यह नहीं कि तारे आकाश से चले जाते हैं। हाँ वे हमें दिखाई नहीं देते। हमारी आँखों के लिए छुप जाते हैं।

१६. तारों का छुपना—दिन में तारे छुप क्यों जाते हैं? विभिन्न पदार्थों से परावर्तित होकर, या उनसे निकलकर आई हुई प्रकाश की तरंगें हमारे नेत्रों में प्रविष्ट होती हैं। नेत्रों के भीतर वे उस वस्तु का प्रतिबिम्ब बनाती हैं जिससे वे आई हैं, यदि कई वस्तुओं के प्रतिबिम्ब हमारे नेत्रों में एक साथ बनें, तो जिस वस्तु का प्रतिबिम्ब सबसे अधिक गहरा होगा, वह वस्तु हमें सबसे अधिक स्पष्ट दिखाई देगी। सूर्य का प्रकाश अत्यन्त शक्तिमान होता है। उसका प्रतिबिम्ब हमारे नेत्रों में इतना गहरा बनता है कि उसके सामने विभिन्न तारों के प्रकाश से बने प्रतिबिम्ब नगण्य हो जाते हैं और वे हमें दिखाई नहीं देते। यह प्रकाश की तरंगें जो हमारी आँखों को सार्थक करती हैं, हमारी दुनिया को रंगीन बनाती हैं, और आकाश के दूर-दूर के कोनों से हमारा सम्बन्ध स्थापित करती हैं। एक सैकिण्ड में १,८६,००० मील की गति से चलती हैं। सूर्य से पृथ्वी तक प्रकाश पहुँचने में लगभग आठ मिनिट लगते हैं।

१७. ध्रुवतारा—आकाश में छोटे-बड़े सब तारे अपने स्थान में परिवर्तन करते रहते हैं। वे गतिवान हैं, चलते-फिरते रहते हैं। हाँ, एक तारा है जिसके स्थान में परिवर्तन

नहीं पाया जाता वह तारा ध्रुवतारा कहलाता है । प्रतिज्ञा करने वाले कहते हैं कि हमारी प्रतिज्ञा ध्रुव के समान अटल है । मार्गी भक्त अपनी भक्ति को ध्रुव-सा निशपल वताते हैं । और विवाह के अवसर पर हिन्दू वर-कन्या को ध्रुव के दर्शन कराये जाते हैं इसलिए कि वे अपने कर्तव्य में ध्रुव के समान अटल रहें और उनकी प्रीति ध्रुव के समान अडिग रहे । यह ध्रुवतारा सदा उत्तर की ओर रहता है उसके निकट का एक तारा-समूह सप्तऋषि कहलाता है । सप्तऋषि के वाहिरी चौखटे को यदि पीछे की ओर वढ़ाया जाये तो वह जाकर ध्रुव से मिल जाता है। सप्त ऋषि की सहायता से आकाश में ध्रुव अत्यन्त सरलता से पहिचाना जा सकता है ।

आकाश में अगणित पिण्ड हैं । पर हमारे लिए सबसे महत्त्वपूर्ण पिण्ड वे हैं जिनका सम्बन्ध सौरमण्डल से है । सौरमण्डल का अर्थ है आकाशीय पिण्डों का वह समूह जिसे ज्योतिष शास्त्र के विद्वान सूर्य के शरीर से उत्पन्न हुआ समझते हैं । उनका ऐसा समझना निराधार कल्पना नहीं हैं । ऐसा समझने के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और अकाट्य कारण हैं ।

१८. सूर्य—सूर्य पृथ्वी से ६,३०,००,००० मील की दूरी पर एक अत्यन्त विशाल अग्निपिण्ड है इसका व्यास ८,६५,००० मील है। यह पानी की अपेक्षा १'४१ गुना घना है और इसमें इतना पदार्थ है कि उससे पृथ्वी के समान ३,३३,४०० पिण्ड वनाये जा सकते हैं । उसके ऊपरी तल का तापमान लगभग ६,००० डिग्री सेंटीग्रेड अनुमाना जाता है । इस तापमान की भयंकरता का अनुमान इस वात से लगाया जा सकता है कि लोहे को पिघलाने के लिए केवल १,५३५ डि० सें० तापमान चाहिए और शुद्ध सोने को पिघलाने के लिए १,०६३ डि० सें० । अत्यन्त कठिनाई से पिघलने वाली धातु टंग्स्टन भी ३,३७० डि० सें० पर पिघल जाती है और ५,९०० डि० सें० पर खौलने लगती है ।

अनुमाना जाता है कि ३-४ अरब वर्षों से काफी पहिले एक सूर्य से भी वड़ा पिण्ड सूर्य के निकट होकर गुजरा । निकट होकर का अर्थ यह कि करोड़ों मील की दूर पर । उस महान् आकाशीय पिण्ड के आकर्षण से सूर्य का एक छोटा-सा भाग टूट गया और आकाश में फैल गया । इसी खण्डित भाग से उन आकाशीय पिण्डों का निर्माण हुआ जिन्हें हम ग्रह कहते हैं । ज्ञात ग्रहों के नाम हैं—बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, वृहस्पति, शनि, यूरेनस, नेपच्यून और प्लुटो ।

१९. वुध—इस ग्रह का व्यास लगभग ३,००० मील है । यह सूर्य के सवसे निकट ३,६०,००,००० मील की दूरी पर है । यह ८८ दिन में सूर्य की परिक्रमा लगा लेता है और ३० मील प्रति सैकिण्ड की गति से चलता है । इसका कोई उपग्रह नहीं है ।

२०. शुक्र—सूर्य और चन्द्रमा के पश्चात् यह आकाशीय पिण्डों में सवसे चमकदार है । वुध के वाद यह सूर्य के निकट दूसरा ग्रह है । इसका व्यास ७,६०० मील है यह

लगभग २२५ दिन में सूर्य की परिक्रमा लगा लेता है और २२ मील प्रति सैकिण्ड की गति से चलता है। शुक्र का भी कोई उपग्रह नहीं है।
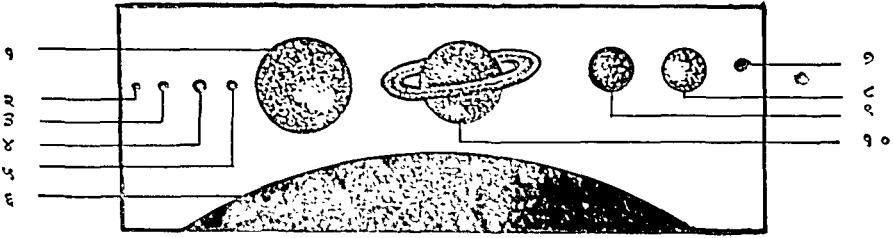
चित्र १.

१. बृहस्पति, २. बुध, ३. मंगल, ४. पृथ्वी, ५. शुक्र, ६. सूर्य, ७. प्लुटो, ८. नेपच्यून, ९. यूरेनस और १०. शनि.

२१. पृथ्वी—दूरी के अनुसार पृथ्वी सूर्य से दूर तीसरा ग्रह है। इसका व्यास लगभग ८,००० मील है, यह सूर्य से ९,३०,००,००० मील दूर है। ३६५$\frac{१}{४}$ दिनों में सूर्य की परिक्रमा लगा लेता है और १८$\frac{१}{२}$ मील प्रति सैकिण्ड की गति से चलता है। इसका एक उपग्रह है जो कवियों को बहुत प्यारा है। वह चन्द्रमा है। चन्द्रमा की उत्पत्ति ज्योतिषी पृथ्वी से मानते हैं! चन्द्रमा पृथ्वी का $\frac{१}{८१}$ भाग है। उसका व्यास २,१६० मील है, वह पृथ्वी से लगभग २,५०,००० मील की दूरी पर है और २७$\frac{१}{३}$ दिन में पृथ्वी की एक परिक्रमा लगा लेता है।

२२. मंगल—चौथा ग्रह मंगल है। इसका व्यास ४,२०० मील है। यह सूर्य से लगभग चौदह करोड़ मील दूर है, १$\frac{२२}{२५}$ वर्ष में सूर्य की परिक्रमा लगा लेता है और १५ मील प्रति सै० की गति से चलता है। इसके दो छोटे-छोटे उपग्रह हैं। बड़े उपग्रह का व्यास लगभग ४० मील है।

२३. बृहस्पति—यह सौर परिवार का सबसे बड़ा ग्रह है। इसका औसत् व्यास लगभग ८६,००० मील है। यह सूर्य से साढ़े अढ़तालीस करोड़ मील की दूरी पर है। ११$\frac{४३}{५०}$ वर्ष में सूर्य की परिक्रमा लगाता है और ८ मील प्रति सै० की गति से चलता है। इसके ११ उपग्रह हैं। सबसे बड़े उपग्रह का व्यास लगभग ३,३०० मील है।

२४. शनि—पूर्व परिचित ग्रहों में यह अन्तिम ग्रह है। इसका औसत व्यास लगभग ७१,००० मील है, यह सूर्य से लगभग नवासी करोड़ मील की दूरी पर है। यह २९$\frac{२३}{५०}$ वर्षों में सूर्य की परिक्रमा पूरी कर लेता है और ६$\frac{१}{२}$ मील प्रति सै० की गति से चलता है इस ग्रह के चारों ओर एक कुण्डल देखा जाता है। इसके नौ उपग्रह हैं। सबसे बड़े उपग्रह का व्यास ३,५५० मील है।

२५. यूरेनस—यह नवज्ञात ग्रह है। इसका व्यास लगभग ३१,००० मील है। यह सूर्य से १७८$\frac{२}{५}$ करोड़ मील दूर है, ८४ वर्ष में सूर्य की परिक्रमा पूरी करता है और ४ मील प्रति सै० की गति से चलता है। इसके पाँच उपग्रह देखे गये हैं।

२६. नेपच्यून—इस ग्रह का व्यास ३३ हजार मील है। यह सूर्य से लगभग २८० करोड़ मील की दूरी पर है और लगभग १६५ वर्षों में अपनी परिक्रमा पूरी करता है। यह ३$\frac{१}{३}$ मील प्रति सै० की गति चलता है। इसके दो उपग्रह हैं।

२७. प्लुटो—यह सबसे पीछे ज्ञात होने वाला ग्रह है। इसके व्यास का ठीक अनुमान नहीं लगाया जा सका है। यह सूर्य से ३६७ करोड़ मील की दूरी पर है, लगभग २४८ वर्षों में अपनी परिक्रमा पूरी करता है, और ३ मील प्रति सै० की गति से चलता है। इसका कोई उपग्रह अभी तक नहीं देखा जा सका है।

२८. आकाश-गंगा—सौरमण्डल के अतिरिक्त हमें आकाश में जो अन्य विचित्र पिण्ड दिखाई देते हैं, वे हैं आकाश-गंगा, धूमकेतु और उल्का। आकाश-गंगा तारों और गर्म गैसों का समुदाय है। अनुमाना जाता है कि आकाश-गंगा में लगभग ५० अरब आकाशीय पिण्ड हैं। आकाश-गंगा की लम्बाई एक लाख प्रकाश वर्ष और चौड़ाई बीस हजार प्रकाश वर्ष अनुमानी जाती है। १,८६,००० मील प्रति सै० की गति से चलने वाला प्रकाश एक वर्ष में जितने मील जाता है, उतने मीलों को एक प्रकाश-वर्ष कहते हैं। प्रकाश-वर्ष आकाशीय दूरी नापने के काम में लाया जाता है।

चित्र २.
धूमकेतु.
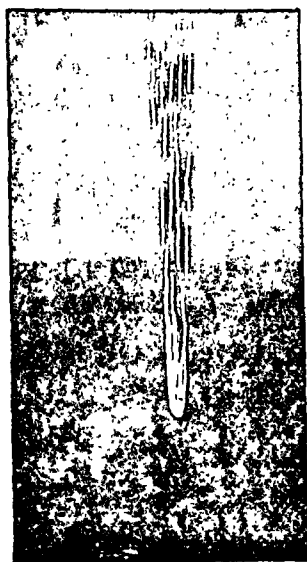
२६. धूमकेतु—धूमकेतु आकाश में कभी-कभी देखने में आते हैं। यह पूँछदार तारे होते हैं जो आकाश में घूमते-घूमते हमारी दृष्टि की सीमा में आ जाते हैं और फिर दूर निकल जाते हैं। इनके एक सिर होता है और एक अथवा कई पूँछें। यह पूँछें लाखों मील में फैली हुई होती हैं। धूमकेतु की पूँछ उस पदार्थ के द्वारा बनती है जो सिर के कम आकर्षण के कारण उससे टूटकर निरन्तर आकाश में बिखरता रहता है। यह सम्भव है कि कुछ धूमकेतु सौर-परिवार के उसी प्रकार सदस्य हों जैसे कि ग्रह और उपग्रह हैं।

३०. उल्का—रात्रि के समय हम प्रायः तारों को टूटता हुआ देखते हैं। छोटे-छोटे आकाशीय पिण्ड आकाश में घूमते हुए पृथ्वी के आकर्षण-क्षेत्र में आ जाते हैं, तो उसीक

ओर खिंच आते हैं । वे जब पृथ्वी के ऊपर व्याप्त वायुमण्डल में प्रवेश करते हैं तो घर्षण से तप उठते हैं और लाल होकर चमकने लगते हैं। वायुमण्डल के घर्षण और ताप के प्रभाव से वे खण्ड-खण्ड होकर रेत बन जाते हैं और पृथ्वी पर बरसते रहते हैं। कभी-कभी तो टनों भारी उल्का धरती पर आ पड़ती हैं। सन १९०८ में साइबेरिया में जो उल्का गिरी थी उसने कई सौ वर्ग मील क्षेत्र में भयंकर विनाश बिखेर दिया था।

अध्याय ३

पृथ्वी और प्राणी

३१. पृथ्वी की आयु—पृथ्वी पर सबसे प्राचीन चट्टान की आयु लगभग दो अरब वर्ष अनुमानी गई है। समुद्र में जितना नमक है, उसके आधार पर समुद्र की आयु भी दो अरब वर्ष से कुछ ही कम ठहरती है। धरती पर गिरी हुई सबसे पुरानी उल्का की आयु तीन अरब वर्ष अनुमानी गई है। इन साक्षियों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि पृथ्वी आज से ३-४ अरब वर्ष पूर्व सूर्य से पृथक् हुई। वह उस समय आग का गोला थी। वह आकाश में घूमती गई और शीतल होती गई। उसका शरीर मुख्यतः लोहे और पत्थर का बना हुआ है। अपनी धुरी पर लट्टू की भाँति घूमने के कारण भारी तरल लोहा बीच में चला गया और हलका तरल पत्थर ऊपर तैर आया। धरती शीतल हुई तो ऊपर के पत्थर पहिले शीतल हुए और ठोस बन गये। वे ठोस पत्थर नीचे के पिघले हुए पत्थर में तैरते रहे।

३२. चन्द्रमा का जन्म—जिन दिनों धरती के ऊपर पपड़ी जम रही थी उन्हीं दिनों चन्द्रमा पृथ्वी से टूटकर अलग हो गया। विभिन्न साक्षियों के आधार पर यह माना जाता है कि चन्द्रमा का शरीर उस हल्के प्रकार की चट्टान का बना हुआ है जो ३ अरब वर्ष पूर्व उस स्थान पर थी जहाँ आज विशाल प्रशान्त महासागर फैला हुआ है। जिस शक्ति ने चन्द्रमा को पृथ्वी से पृथक् होने को बाध्य किया वह शक्ति सूर्य के आकर्षण से पृथ्वी के शरीर में उठने वाली लहरों की शक्ति थी।

जब चन्द्रमा पृथ्वी से पृथक् हुआ तो पृथ्वी के संतुलन में गड़बड़ी पड़ गयी। कुछ चट्टानें पिघले तरल में गहरी धँसीं, कुछ ऊपर उभरीं। कहीं-कहीं नीचे का पिघला पदार्थ जमी पपड़ी को फोड़कर ऊपर निकल आया। फल यह हुआ कि पृथ्वी के ऊपर का भाग कहीं ऊँचा हो गया और कहीं नीचा। पृथ्वी अब भी तप रही थी। वह इतनी शीतल नहीं थी कि उसके चारों ओर घुमड़ती पानी की भाप उस पर पानी बनकर उतर सके। समय बीतता गया और पृथ्वी शीतल होती गई। वह इतनी शीतल हो गई कि बादल बूँद बनकर जब उस पर उतरे तो तुरन्त उड़ नहीं गये। पानी बरसा और गड्ढों में भर गया। यह बड़े-बड़े गड्हे हमारे समुद्र हैं।

३३. जल की क्रीड़ा—आज हम पृथ्वी का जो रूप-रंग निरखते हैं उसके निर्माण का अधिकांश श्रेय जल को है। जल सागरों से वाष्प बनकर उड़ता है। ऊँची हवा में चढ़ता है। नन्हीं-नन्हीं बूँदों के रूप में जम जाता है तो हमें बादल दिखाई देते हैं। जब यह

बूँदें मिलकर बड़ी-बड़ी हो जाती हैं, और उनका बोझ हवा नहीं सँभाल पाती तो वे पृथ्वी पर लौट आती हैं और हम कहते हैं कि पानी बरस रहा है। पानी समुद्र में भी बरसता है और पहाड़ों तथा मैदानों पर भी बरसता है। जब पृथ्वी पर पानी नहीं था तो पहाड़ और मैदान चट्टानों के बने थे। यह चट्टानें पत्थर को पिघलाकर आग ने बनाई थीं, इसलिए आग्नेय चट्टान थीं। जब पानी बरसा तो इन आग्नेय चट्टानों पर गिरा। आग्नेय चट्टानों में विभिन्न गुण वाले पदार्थ थे। इन पदार्थों को मोटे तौर से दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। एक वे पदार्थ जो पानी में घुल जाने वाले हैं और जिनमें नमक सबसे प्रधान है। दूसरे वे पदार्थ, जो पानी में घुलने वाले नहीं है। हाँ, तो पानी बरसा और घुलने वाली चट्टानों को अपने में घुलाकर सागर में ले गया। पर इसका अर्थ यह नहीं कि उसने न घुलने वाली चट्टानों को छोड़ दिया। पानी बहता था और इस बहने में शक्ति थी। पानी की बहाव की शक्ति ही वह छेनी थी, जिससे काट काटकर प्रकृति ने अघुलनशील चट्टानों को खण्डित किया और उन्हें उतारकर ऊँचाइयों पर से नीचे लायी। चट्टानें कटीं तो रेत बनीं और रेत और भी बारीक हुई तो मिट्टी बनी। रेत और मिट्टी पानी में घुलीं तो नहीं, पर उनके अत्यन्त लघु-लघु कण पानी में तैरते उसके साथ बह गये। पानी सागर या झील में जाकर ठहरा। पानी स्थिर हुआ तो रेत और मिट्टी के यह कण तलछट के रूप में सागर या झील की तली में बैठ गये। युग बीतते गये, पानी बरसता गया, पहाड़ कटते गये और झीलों-सागरों की तलियों पर तलछट की तह पर तह जमती गई। कुछ झीलों में इतनी तलछट जम गई कि उसकी तली उभर कर आस-पास की भूमि के बराबर ऊँची हो गई, झील भर गई और मैदान बन गया। नीचे वाली तलछट की तहों पर जो लाखों बरस तक ऊपर का भारी बोझ पड़ता रहा तो वे दबकर कठोर शिलायें बन गईं। इस प्रकार जो चट्टानें बनीं वे तलछटी चट्टानें कहलाईं। हम लोग मकान आदि बनाने में जिन सपाट शिलाओं का उपयोग करते हैं वे इसी प्रकार निर्मित हुई हैं।

पानी बहा तो उसने तलछटी चट्टानें बनाईं, समुद्र में नमक एकत्र किया और झीलों को भरकर मैदान बनाये। वे मैदान जो मनुष्य की सभ्यता के केन्द्र हैं जहाँ उसके परम उपजाऊ खेत हैं। गंगा और सिन्धु का विस्तृत मैदान जल की इस क्रीड़ा द्वारा ही बना है, अरावली, विंध्याचल और हिमालय की चट्टानें पानी के जबड़ों की रगड़ से मिट्टी बनी हैं तो उत्तर भारत के इतिहास का शिलान्यास हुआ है और मनुष्य के इतिहास को राम, कृष्ण, बुद्ध और अशोक जैसे नाम प्राप्त हुए हैं।

लगभग ४८ करोड़ वर्ष पूर्व विंध्याचल की श्रेणियाँ उभरीं और लगभग साढ़े पाँच करोड़ वर्ष पूर्व हिमालय का उभरना आरम्भ हुआ। कोई पचास करोड़ वर्ष पूर्व पृथ्वी के निवासी केवल तीन थे। चट्टानें; जो धरती पर जड़ पड़ी रहती थीं। धूप, उल्का, वर्षा

जो ऊपर आ पड़ती थीं उसे सहती थीं। न गर्मी उन्हें सताती थी, न शीत उन्हें कँपाती थी। वे चल-फिर भी नहीं सकती थीं। पानी; जो ऊँचाइयों के ऊपर गिरता था तो निचाइयों की ओर वह निकलता था। पर उसमें यह सामर्थ्य नहीं थी कि स्वयं दौड़कर पहाड़ी पर चढ़ जाये। और थी हवा; जो गर्मी-सर्दी से प्रभावित होती थी और आँधी-तूफ़ान बनकर चलती थी। बस चट्टान, पानी और हवा धरती के निवासी यह तीन थे।

३४. विन्ध्याचल की आयु—विन्ध्याचल के बचपन के युग में पृथ्वी की धरातल पर एक महान् घटना घट रही थी। एक अत्यन्त विचित्र परीक्षण इस ग्रह पर आरम्भ हो रहा था। निर्जीव चट्टान, पानी और हवा प्रकृति की प्रयोगशाला में पृथ्वी के चौथे निवासी को जन्म देने का प्रयत्न कर रही थीं। एक अज्ञात शक्ति इन निर्जीवों का उपयोग करके सजीव को बनाने में दत्तचित्त थी। पुरातन चट्टानों में दबे जीव शरीरों की साक्षी के आधार पर कहा जाता है कि कम-से-कम पचास करोड़ वर्ष पहिले इस पृथ्वी पर जीव की उत्पत्ति हुई। पृथ्वी पर जीव की उत्पत्ति कैसे हुई? सम्भावनायें दो हैं। प्रथम सम्भावना तो यह है कि जीवन के बीज पृथ्वी पर उतरी किसी उल्का के साथ किसी दूर-स्थित आकाशीय पिण्ड से आये हों। पृथ्वी पर उन्हें अनुकूल परिस्थिति मिली हो और वे यहाँ फैले-फूटे हों। दूसरी सम्भावना यह है जीवन की सृष्टि। इसी पृथ्वी पर निर्जीव परिस्थितियों में से हुई हो। चाहे किसी प्रकार भी जीवन पृथ्वी पर आया हो, हमें अभी इसका कुछ ज्ञान नहीं है कि निर्जीव किस प्रकार सजीव में परिवर्तित हो जाता है? शक्ति किस प्रकार अपने ही नाना रूपों में विलास करती हुई इस क्रीड़ा तक पहुँचती है?

३५. जीवन की सृष्टि—जीव की सृष्टि सबसे पहिले जल में हुई। जल जीव के शरीर का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाग है। सबसे प्रथम जिन जीवों की उत्पत्ति और विकास हुआ उनके शरीर अत्यन्त लघु और एक ही कोठे के बने हुए हैं। यह जीव इतने छोटे हैं कि बिना सूक्ष्म दर्शक यन्त्र की सहायता के दिखाई नहीं देते। अनेक साक्षियों के आधार पर यह कहा जाता है कि प्रारम्भिक जीवन में वनस्पति और जंतुओं में भेद न था अर्थात् कुछ ऐसे जीव हैं जो वनस्पति वर्ग में भी सम्मिलित किये जा सकते हैं और जन्तु वर्ग में भी। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, जीवों के शरीर में विकास होता है। वनस्पति और जन्तु दो भिन्न वर्ग बन गये। केकड़े, सीपी वर्गों के पुरखाओं के शरीर लगभग ४६ करोड़ वर्ष पुरानी चट्टानों में पाये गये हैं। मछलियों के शरीर ३७ करोड़ वर्ष पुरानी चट्टानों में मिले हैं। मेढ़क जैसे थल और जल दोनों स्थानों पर रहने वाले जन्तुओं के शरीर ३३ करोड़ वर्ष पुरानी चट्टानों में पाये गये हैं। छिपकली, सर्प जैसे पेट के बल चलने वाले जन्तुवों के शरीर २८ करोड़ वर्ष पुरानी चट्टानों में मिले हैं। पक्षियों के शरीर लगभग १४ करोड़ वर्ष पुरानी चट्टानों में प्राप्त हुए हैं, पर उन जीवों के शरीर जो अपने बच्चों को दूध पिलाते हैं, इनसे तीन करोड़ वर्ष प्राचीन चट्टानों में भी

मिलते हैं। मनुष्य के शरीर पुरानी चट्टानों में नहीं पाये जाते । उसका विकास लगभग पिछले दस लाख वर्षों में हुआ है । चट्टानों में इस प्रकार जिन जन्तु-शरीरों के आकार सुरक्षित हैं उनके अध्ययन से प्राणिकी के विद्वान् इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जीवन का

चित्र ३.

जीवन-वृक्ष.

वृक्ष परिस्थिति-अनुसार विकसित होता चला गया है । जीवन-शक्ति में शरीर को आवश्यकतानुसार परिवर्तित कर देने की एक विचित्र क्षमता है । प्रकृति का लक्ष्य व्यक्ति के जीवन की रक्षा उतना नहीं है जितना कि जाति के जीवन की रक्षा है । प्रकृति के विकास की दिशा निर्जीव से सजीव की ओर, और सजीव में पशुबल से मस्तिष्क की ओर

है। नवीन विकसित जीवों में पेशियों की कमी और मस्तिष्क की अधिकता पाई जाती है।

३६. **वनस्पति**—जल के भीतर जन्तुओं का विकास बहुत हुआ। पौदों के विकास के लिए जल उतना उपयोगी नहीं सिद्ध हुआ। ऐसे पौदे बहुत कम हैं जो मछलियों, सीपियों और मूँगों की भाँति सदा पानी में डूबकर आनन्द मना सकें। पौदे पानी से बाहिर निकल खुली वायु चाहते थे। थलीय पौदों के शरीर लगभग ३६ करोड़ वर्ष प्राचीन चट्टानों में पाये जाते हैं। सब वनस्पतियों में फूल नहीं आते। फूलों का विकास पीछे हुआ। फूलदार वनस्पति के शरीर हमें सबसे पहिले लगभग १२ करोड़ वर्ष पुरानी चट्टानों में मिलते हैं।

३७. **जन्तु**—जब वनस्पति थल पर फैल गई, घास झाड़ियों के बड़े-बड़े बन उपज आये तो उनको खाकर जीवन यापन करने वाले, खरगोश, हिरन, गाय, भैंस, घोड़ा, हाथी आदि जीवों का विकास हुआ। जब घासभोजी जन्तुओं की बहुतायत हो गई तो उनका आहार करने वाले मांसभोजी पशुवों का विकास हुआ। अन्त में जिस जीव का विकास हुआ है वह है मनुष्य।

३८. **प्रकृति के परीक्षण**—जीवन के इस लगभग ५० करोड़ वर्ष पुराने इतिहास में पौदों और जन्तुवों की अनगिनत जातियाँ बनी हैं। प्रकृति इस ओर निरन्तर परीक्षण करती रहती है। कितनी ही जातियाँ जो परिस्थिति के अनुकूल नहीं थीं, जो समय-समय पर होने वाली भौमिकी दुर्घटनाओं से अपनी रक्षा नहीं कर सकीं एकदम मिट गई हैं। इन मिटने वाली जातियों में ऐसे जन्तु हैं जो हमारे वर्तमान हाथी से कई गुना बड़े और बलशाली थे। दूसरी ओर पौदों और जन्तुओं की वे लघु और सक्षम जातियाँ भी हैं जो आज भी लगभग उसी प्रकार जीवन यापन कर रही हैं जैसे कि पचास करोड़ वर्ष पहिले कर रही थीं।

अध्याय ४

वन, बगीचे और खेत

३६. पौदे—वनस्पति या पौदों की उत्पत्ति जन्तुओं की उत्पत्ति से पहिले हुई। वह जल में हुई। पौदों में यह क्षमता है कि वह सूर्य की शक्ति का सीधा उपयोग कर सकते हैं। धरती से जड़ द्वारा सोखे गये जल, उसमें घुले हुए धातु-पदार्थों और वायु से कार्बन 'द्वआक्साइड नामक गैस को लेकर वह उनसे लकड़ी, चर्बी, गोंद, शक्कर और गेहूँ-चावल से मिलने वाली माँडी को तैयार कर सकते हैं।

४०. विलक्षण-क्षमता—जन्तुओं में ऐसी सामर्थ्य नहीं है। वे वनस्पति को खाते हैं, दूसरे जन्तु को खाते हैं। वे किसी सजीव पदार्थ से ही अपना शरीर बना पाते हैं। हमारे भोजन का अधिकांश भाग जीवनधारी पौदों के विभिन्न अंग होते हैं।

४१. जलपौदे—जल में उपजे पौदे। उन्हें सूर्य की किरनों की आवश्यकता थी इसलिए वे सागर की गहराई में नहीं पनप सकते थे। वे ऊपर की ओर पानी की सतह के निकट रहे और अत्यन्त लघु पत्तियों वाली काइयों के रूप में खूब फैले। इन काइयों जैसी पत्तियों का कुल इतना बढ़ा कि उन्हें खाकर समुद्र में रहने वाले असंख्य जन्तुओं का जीवन सम्भव हो गया। समुद्र में यह लघु पौदे बढ़े तो खूब, पर उनमें विविधता का विकास नहीं हुआ। आँधी-तूफानों की सहायता लेकर वे सागर से बाहिर थल पर आये और उनमें विविधता का विकास आरम्भ हुआ।

४२. थलपौदे—वे थल पर फैल गये। वे नदियों के किनारे उगे, तालाबों में उगे। थल पर उगे, रेगिस्तानों में चले गये और ऊँची-ऊँची पहाड़ियों पर उगने के लिए चढ़ गये। वे ऊँचे चढ़ते चले गये जब बिल्कुल बारहमासी हिम के बीच पहुँच गये तो उनका चढ़ना समाप्त हुआ। जल में पौदे छोटे थे, थल पर आकर वे खजूर से ऊँचे और बड़ से विशाल हो गये। जब पहाड़ों पर चढ़ने लगे तो फिर उनका आकार घटने लगा और वे धरती पर फैलने वाली घासों के छत्तों के समान रह गये। इस फैलाव में पौदों की लाखों जातियाँ बन गईं।

मनुष्य के काम में आने वाले पौदे तालाबों में उगते हैं, जलाशयों के तटों पर उगते हैं और थल पर खेतों, बगीचों और वनों में उगते हैं। सरोवरों में बड़ा कमल उगता है और छोटी कुमुद उगती है। सिंघाड़ा भी तालाबों में बोया जाता है। सागर के किनारे के प्रदेशों में खजूर के समान दो वृक्ष होते हैं। जिनके फलों से हम देवताओं की पूजा करते हैं। ये फल हैं, सुपारी और नारियल। नारियल देवताओं के लिए

ही उपयोगी नहीं है। वह संसार के करोड़ों मनुष्यों के भोजन का आवश्यक अंश भी है।

थल के पौधों में फल हैं और तरकारियाँ हैं। फल हमें अपेक्षाकृत ऊँचे पेड़ों से प्राप्त होते हैं। आम, अमरूद, संतरा, केला, शरीफ़ा, नासपाती आदि हमारे प्रमुख फल हैं। तरकारियाँ हमें बेलों या छोटी-छोटी झाड़ियों से मिलती हैं। लौकी, तोरी, बैंगन, मिर्च, सीताफल आदि इस श्रेणी के प्रतिनिधि हैं। पर पौधों में मनुष्य के लिए जो सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं, वह हैं घासें। इसलिए नहीं कि मनुष्य के पालतू पशु घास खाते हैं, वरन् इसलिए कि मनुष्य स्वयं घासों के बीज खाकर जीवन यापन करता है। जिन दो प्रमुख घासों के आश्रय पर आज संसार का अधिकांश मानव-समाज पल रहा है उन्हें हम चावल और गेहूँ कहते हैं। मकई, बाजरा, ज्वार, चना, अरहर आदि भी घासें हैं जिन्हें मनुष्य ने पालकर अन्न के पद पर प्रतिष्ठित कर लिया है। हम फल बागों में बोते हैं, तरकारी बगीचों में उगाते हैं और अन्न के लिए खेत बनाते हैं।

४३. बीजहीन पौदे—सब पौदों में बीज नहीं होते। जिन पौदों में बीज नहीं होते, उनके डंठलों में गाँठें होती हैं। उचित परिस्थिति पाकर इन गाँठों में कल्ले फूट निकलते हैं। काफी पौदे ऐसे हैं जो बीज भी उत्पन्न करते हैं और जिनके डंठलों में गाँठें भी होती हैं।

चित्र ४.
बीजहीन उपज.
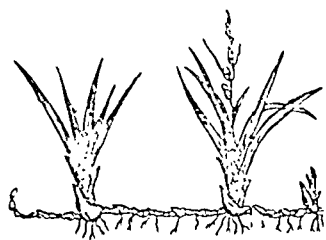
४४. बीज पौदे वान—जिन पौदों के बीज होते हैं उनके बीज बोये जाते हैं। मनुष्य जिन पौदों की खेती करता है, उनमें अक्सर बीज ही बोये जाते हैं पर कुछ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पौदे हैं जिनकी गाँठें काम में लायी जाती हैं। गन्ना और आलू इस प्रकार की सबसे महत्वपूर्ण फसलें हैं। केला भी इसी प्रकार उगता है। गाँठों द्वारा होने वाली उगावट को अलैंगिक उगावट और बीजों द्वारा होने वाली उगावट को लैंगिक उगावट कहते हैं।

४५. बीजों का उगना—गाँठें जब सूख जाती हैं तो उनमें उगने की शक्ति नहीं रह जाती। बीजों के उगने की शक्ति भी कुछ समय के पश्चात् नष्ट हो जाती है। कपूर के वृक्ष का बीज कुछ दिनों में ही अपने उगने की शक्ति खो देता है और दूसरी ओर कमल के बीज हैं जो शताब्दियों तक जल का अभाव सहते हुए अपनी इस क्षमता को अक्षुण्ण बनाये रखते हैं। जब जल प्राप्त होता है, परिस्थितियाँ अनुकूल होती हैं तो जैसे न जाने कहाँ से कमल के फूल और पत्ते जल के ऊपर तैर आते हैं। जान पड़ता है कि कमल-बीज की इस महाप्राणता के कारण ही हमारे पुरखाओं ने सृष्टिकर्ता ब्रह्मा को कमल के ऊपर आसीन किया है।

बीजों में मूल और पत्ते अत्यन्त लघु रूप में उपस्थित रहते हैं। इनके अतिरिक्त नवजात पौदे को कुछ समय तक जीवित रखने के लिए भोजन भी होता है। कुछ पौदों के बीजों में एक ही पत्ता होता है इसलिए वह पौदे और उनके बीज एकपत्रीय कहलाते हैं। गेहूँ, चावल, मक्का, बाजरा आदि एकपत्रीय है। दालों के बीजों में दो पत्ते होते हैं इसलिए वे द्विपत्रीय बीज या पौदे कहलाते हैं। एकपत्रीय बीजों में भोजन पत्र से बाहिर रखा होता है। पर द्विपत्रीय बीजों में बहुधा वह पत्रों के भीतर होता है जिससे पत्ते फूल जाते हैं। हमारी दालें यही पत्ते होते हैं।

चित्र ५.
इकपत्रीय बीज का उगना
१. और २. अंकुर का भोजन, स्टार्च, ३. सुप्त अंकुर, ४. पत्र भाग, ५. मूल भाग.

जब बीज को उचित भूमि, उचित नमी और उचित तापक्रम प्राप्त होता है तो उसके भीतर परिवर्तन आरम्भ हो जाते हैं। यह परिवर्तन जीवन-शक्ति द्वारा परिचालित रसायनिक परिवर्तन होते हैं। बीज फूलता है उसमें स्थिति विकर या एन्ज़ाइम नामक पदार्थ क्रियाशील हो उठते हैं। बीजों का भोजन पानी में घुलने वाला नहीं होता। विकर की क्रिया से उसमें परिवर्तन आ जाता है और वह पानी में घुलने वाला बन जाता है। पानी में घुलनशील बनकर यह भोजन अंकुर में पहुँचता है। जीवन की शक्ति जाग जाती है। बीज का आवरण फट जाता है। मूल और पत्र भाग दोनों बढ़ना आरम्भ कर देते हैं। बीज चाहे किसी भी दशा में पड़ा
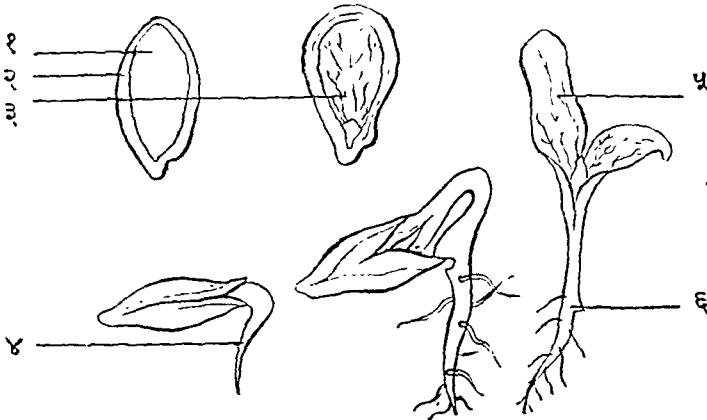
चित्र ६. १ और ३. दाल, २. छिलका, ४. मूल भाग, ५. पत्र भाग, ६. द्विपत्रीय बीज का उगना.

हो मूल सदा अँधेरे और धरती की ओर बढ़ती है और पत्र भाग सदा प्रकाश की ओर अपना सिर उठाता है। व्यवस्था ऐसी होती है कि जब तक बीज में संग्रहीत भोजन भण्डार समाप्त होता है तब तक नवजात पौदा स्वयं अपना भोजन प्राप्त करने और निर्माण करने के योग्य हो जाता है।

४६. **पत्ते और जड़**—पौदे के पत्ते वायु में उटते हैं और जड़ें धरती के भीतर जल तथा भोजन की खोज में इधर-उधर बढ़ती हैं। जड़ों में अत्यन्त महीन-महीन रोम होते हैं। इन रोमों में बहुत से अत्यन्त छोटे-छोटे छेद होते हैं। इन छेदों के मार्ग से जड़ें धरती में से पानी चूसती हैं। यह पानी जड़ों में उसी रीति से पहुँचता है जिस रीति से वह सूखी किशमिश में प्रवेश पाकर उसे फुला देता है। जब पानी चूसा जाता है तो पानी में जो पदार्थ घुले होते हैं वह भी जड़ों के द्वारा पौदे के भीतर चुस जाते हैं। पानी में घुलने वाले पदार्थों में मिट्टी का कुछ भाग होता है और पुरानी सड़ी-गली वनस्पतियों के लघु अंश होते हैं। वृक्षों की जड़ों द्वारा चूसा हुआ यह जल पौदे के तने में होकर पत्तियों में पहुँचता है। इन पत्तियों का रंग हरा होता है और उनमें छोटे-छोटे बहुत से छिद्र होते हैं।

४७. **भोजन**—यह पत्तियाँ इनमें से कुछ छिद्रों द्वारा वायुमण्डल में से कार्बन-द्वि-आक्साइड नाम की गैस सोखती हैं। यह वह गैस है जो लकड़ी या कोयले के जलने पर बनती है, और जन्तुओं की श्वास-क्रिया में बाहिर निकाली जाती है। जन्तुओं के लिए यह अशुद्ध और घातक हवा है। वृक्षों की पत्तियाँ इसे भीतर खींच लेती हैं, जड़ से आये हुए कुछ जल-कणों को इसके साथ मिलाती है, सूर्य के प्रकाश से शक्ति ग्रहण करती है। और एक रसायनिक क्रिया सम्पादित करती है। पत्तियों में जो हरा-हरा पदार्थ होता है उसमें इस रसायनिक क्रिया को चलाते रहने की क्षमता है। इस रसायनिक क्रिया का फल यह होता है कि जल से हाइड्रोजन और आक्सीजन तथा कार्बन-द्वि-आक्साइड से कार्बन के परमाणु प्राप्त कर यह हरा पदार्थ अंगूरी शक्कर या ग्लूकोज के व्यूहाणु बना लेता है। यह व्यूहाणु अन्य रसायनिक क्रियाओं द्वाग और उन विभिन्न पदार्थों के संयोग से, जो धरती में से पानी के साथ चूसकर लाये गये हैं, उन सब लकड़ी, तेल, गोंद, माड़ी, रंग आदि पदार्थों का निर्माण करते हैं जिनकी कि पौदे के जीवन में आवश्यकता होती है।

पत्तियों में हरे पदार्थ की सहायता से यह रसायनिक क्रिया होती है। जितना पानी जड़ें सोखकर ऊपर पत्तियों में भेजती हैं, वह सब इन रसायनिक क्रियाओं में उपयोग नहीं हो जाता। उसका बहुत बड़ा भाग वाष्प रूप में पत्ते के छिद्रों के मार्ग से वायुमण्डल में उड़ जाता है। इस रीति से एक साधारण वृक्ष प्रतिदिन कई मन पानी धरती से चूसकर वायुमण्डल में भेज देता है। वह वायुमण्डल में जल वाष्प का परिमाण बढ़ाता है और इस प्रकार अधिक वर्षा को प्रोत्साहन देता है। वन प्रदेशों में जल्दी-जल्दी

और अधिक वर्षा होने का यह एक महत्त्वपूर्ण कारण है। इस गुण की विशेषता के कारण कुछ इक्विलिप्टस वृक्षों का उपयोग दलदलों को सुखाने के लिए किया गया है।

वृक्ष कार्बन-द्वि-आक्साइड का कार्बन ले लेते हैं तो आक्सीजन बच जाती है। इस आक्सीजन को भी वे बाहिर वायुमण्डल में निकाल देते हैं। जंतुवों की साँस के लिए शुद्ध वायु की आवश्यकता है। शुद्ध वायु का अर्थ है वह वायु जिसमें कार्बन-द्वि-आक्साइड कम-से-कम मात्रा में हो। इस प्रकार वृक्ष मनुष्य के लिए वायु को शुद्ध करते हैं। बड़े-बड़े नगरों में जहाँ बहुत से मनुष्य बसते हैं और हजारों मन ईंधन नित्य जलाया जाता है, यह नितांत आवश्यक है कि बहुत से वृक्ष लगाये जायें और स्थान-स्थान पर घास भरे मैदान बनाये जायें। घास और वृक्षों के यह हरे-भरे मैदान नगरों के फेफड़े कहलाते हैं।

४८. **सूर्य की शक्ति**—इस विषय में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बात ध्यान में रखने की है पत्तियों की। यह रसायनिक क्रिया उसी समय तक चलती रहती है जब तक कि उसे सूर्य का प्रकाश प्राप्त होता रहता है। सूर्य का प्रकाश जब पत्ती को नहीं मिलता तो यह रसायनिक क्रिया बन्द हो जाती है और वायु का शुद्ध होना भी बन्द हो जाता है। वृक्ष के निकट की वायु में दिन में ही अधिक आक्सीजन होता है रात्रि में नहीं।

पत्तियों में जो रसायनिक क्रिया होती है, उसमें शक्ति की आवश्यकता होती है। इस रसायनिक क्रिया में जो शक्ति काम में आती है वह कहाँ से प्राप्त होती है ? निस्सन्देह वह सूर्य के प्रकाश से प्राप्त होती है, और नौ करोड़ मील चलकर आती है। पत्तियाँ वे मशीनें हैं जिनमें सूर्य की शक्ति को संग्रह करके रख देने की क्षमता है। मनुष्य पत्तियों की इस शक्ति से आज बहुत लाभ उठा रहा है। उसकी आज की सभ्यता कोयले और पेट्रोल के बल पर खड़ी है। यह दोनों पदार्थ हमें करोड़ों वर्ष प्राचीन वनस्पतियों के शरीरों से प्राप्त होते हैं। उन दिनों पत्तियों ने जो सूर्य की शक्ति वृक्षों के अंगों में संग्रहीत करके रखी थी उसका उपयोग हम आज अपने इंजनों को चलाने में कर रहे हैं। पत्तियों ने जिस शक्ति को बन्दिनी बनाकर वृक्षों के अंगों में रखा था वही शक्ति कोयले के जलने पर मुक्त हो जाती है।

४६. **साँस**—अब तक हमने पौदों के भोजन की बात की। पर पौदा तो सजीव होता है। जो जीता है वह साँस लेता है। साँस का चलना जीवन की बहुत बड़ी पहिचान है। अन्य प्राणियों की भाँति पौदे भी साँस लेते हैं। वे साँस ठीक उसी प्रकार लेते हैं जिस प्रकार कि जंतु लेते हैं। जंतु आक्सीजन भीतर लेते हैं और कार्बन-द्वि-आक्साइड बाहिर निकालते हैं। पौदे भी आक्सीजन भीतर लेते हैं और कार्बन-द्वि-आक्साइड बाहिर निकालते हैं। रात्रि के समय वृक्षों में प्रकाश की सहायता से भोजन बनाने की रसायनिक क्रिया तो बन्द हो जाती है पर साँस की क्रिया चलती रहती है। फल यह होता है कि पौदे द्वारा साँस क्रिया में छोड़ी गई कार्बन-द्वि-आक्साइड दिन में तो पत्तियों के हरे पदार्थ द्वारा

सोख ली जाती है, पर रात्रि के समय में वह वायुमण्डल में निकलने लगती है। रात्रि के समय वृक्षों से आक्सीजन नहीं, कार्बन-द्वि-आक्साइड निकलती है। वृक्ष रात्रि में वायु को शुद्ध नहीं अशुद्ध करते हैं। उनके निकट में वायुमण्डल में कार्बन-द्वि-आक्साइड की अधिकता पाई जाती है। कुछ घने और बड़े वृक्षों के नीचे तो कार्बन-द्वि-आक्साइड की घनता इतनी बढ़ जाती है कि उनके नीचे जाने से दम घुटने लगता है। जो इसका रहस्य नहीं जानते वे ऐसे सघन विस्तृत वृक्षों पर भूतों का निवास बताते हैं, और रात्रि के समय उसके निकट जाते घबराते हैं। वृक्ष केवल पत्तियों के ही मार्ग से साँस नहीं लेते, छोटी-छोटी टहनियाँ और हरे तने भी इस काम में हाथ बँटाते हैं। साँस लेने की क्षमता भी पौदों में जंतुओं से कुछ विशेष होती है। वायु के अभाव में वे कुछ समय तक अपने भीतर उपस्थित ग्लूकोज़ से आक्सीजन लेकर साँस लेते रहने में समर्थ होते हैं। इस क्रिया में ग्लूकोज़ में रसायनिक परिवर्तन हो जाता है। उसका व्यूहाणु टूट जाता है।

पत्तियाँ वृक्ष का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग हैं। उन्हें दिन-रात काम में लगा रहना होता है। उनका हरा पदार्थ निरन्तर रसायनिक क्रिया में सहायता देता रहता है। प्रकृति ने लाखों वर्षों के अनुभव से यह जान लिया है कि यह हरा पदार्थ लगभग एक वर्ष तक ही अपनी पूर्ण क्षमता के साथ काम कर सकता है। अधिक पुराना हो जाता है तो थकने लगता है। पत्तियों में इस प्रकार की अयोग्यता वृक्षों के लिए बड़ी हानिकारक होगी, इस लिए प्रकृति ने व्यवस्था की है कि प्रति वर्ष वृक्षों की पत्तियाँ गिर जायें और नवीन पत्तियाँ निकल आयें। पत्तियाँ जब गिरती हैं तो वे वृक्ष का जीवित अंग नहीं रहतीं। उनकी स्थिति लगभग उसी प्रकार की हो जाती है जैसी कि हमारे बढ़े हुए नखों की।

५०. लघु कोठे—वृक्षों का शरीर लघु कोठों का बना होता है। वृक्षों के जिस अंग को जैसे कोठों की आवश्यकता होती है उस अंग में वैसे ही कोठे होते हैं। जो नलियाँ जड़ों से पानी लेकर पत्तियों में पहुँचाती हैं वे भी कोठों की बनी होती हैं और जो नलियाँ पत्तियों से निर्मित पदार्थों को वृक्ष के अन्य अंगों में पहुँचाती हैं वे भी कोठों की बनी होती हैं।

५१. पतझड़—पतझड़ के दिनों में जब किसी वृक्ष की पत्तियाँ गिरने वाली होती हैं तो वृक्ष में एक विशेष क्रिया होने लगती है। जिस स्थान पर पत्ती टहनी से जुड़ती है, उस स्थान पर एक विशेष गुण वाले कोठे बनने आरम्भ हो जाते हैं। यह कोठे ऐसे होते हैं कि पत्ती में जाने वाले जल का मार्ग बन्द कर देते हैं। जल और धरती से सोखे खनिज पदार्थों के न प्राप्त होने से पत्तियाँ पीली पड़ने लगती हैं। जब रसवाही नलियों के बीच में यह कोठे आ जाते हैं तो टहनी से पत्ती का जोड़ बहुत दुर्बल हो जाता है। फल यह होता है कि वायु का साधारण-सा झटका लगते ही पत्ती टहनी से टूटकर पृथक् हो जाती है और वायु में तैरती हुई धरती पर उतर आती है। वृक्ष एकदम नंगे हो जाते हैं और

धरती पीले पत्तों से ढँक जाती है।

जब पत्तियाँ गिरती होती हैं और वृक्ष दयनीय दिखाई देते हैं तब उनकी टहनियों के भीतर जीवन की शक्ति अत्यन्त परिश्रम के साथ क्रियाशील होती है। नवीन गाँठें उभरती हैं, टहनियों के सिरे आगे बढ़ते हैं। इन स्थानों से धीरे-धीरे वह कलियाँ उठती हैं जो अपने संपुट में नवीन रक्तिम पत्तियों को छुपाये हुए होती हैं। यह कलियाँ खुलती हैं, उनके ऊपर का आवरण हट जाता है, और गर्भित पत्तियाँ अपने को फैलाना आरम्भ कर देती हैं। इस अवसर पर नवीन टहनियाँ और पत्तियाँ अत्यन्त तेजी के साथ बढ़ती हैं और देखते-देखते कुछ दिनों में वृक्ष एक नवीन चमकदार हरे परिधान से ढँक जाता है। नवीन पत्तियाँ पुरानी पत्तियों का काम सँभाल लेती हैं, वृक्ष की इन लघु-लघु फैक्ट्रियों में निर्जीव पदार्थ को सजीव का अंग बनाने की क्रिया फिर चालू हो जाती है। प्रतिवर्ष पतझड़ आती है और चली जाती है। वृक्ष जीवन के नये गौरव से प्रफुल्लित हो उठते हैं।

५२. जीवन का लक्ष्य—पौदा है; वृक्ष है; घासें हैं। इनके जीवन का लक्ष्य क्या है? हम खेत में चने बोते हैं, पौदा उगता है, बड़ा होता है, उसमें लघु-लघु सुन्दर-सुन्दर बैंगनी रंग के फूल आते हैं, फूल के कुछ अंग झड़ जाते हैं और कुछ फलों में परिवर्तित हो जाते हैं। फल के भीतर बीज होते हैं। यह बीज बिल्कुल वैसे ही चने होते हैं जैसे कि हमने खेत में बोये थे। बीज बन जाता है तो चने का पौदा जीवित नहीं रहता। वह सूख जाता है, मर जाता है। बीज गलने से लेकर बीज बनने तक ही चने का पौदा जीवित रहता है। जीवन का लक्ष्य है जाति को भविष्य में जीवित रखना। वृक्षों का उद्देश्य है, बीज या वे गाँठें उत्पन्न करना जिससे नवीन पौदा उत्पन्न हो सके।

५३. नर और मादा—बीज बनें इसके लिए पौदों में फूल आते हैं। फूल के साधारणतया चार भाग होते हैं। बाहिरी भाग डंठल से जुड़ा भाग हरी पत्तियों का होता है, जो एक प्याला-सा बनाकर शेष तीनों भागों को एकत्र रखती है। प्याले के भीतर पंखुड़ियाँ होती हैं। यह प्रायः रंगीन होती हैं, और सुगन्धिवान होती हैं। इनके भीतर नर भाग होता है। यह अक्सर महीन या मोटे तन्तुओं के रूप में होता है। इन तन्तुओं पर एक बुरादा-सा लगा रहता है जो पराग कहलाता है। सबसे
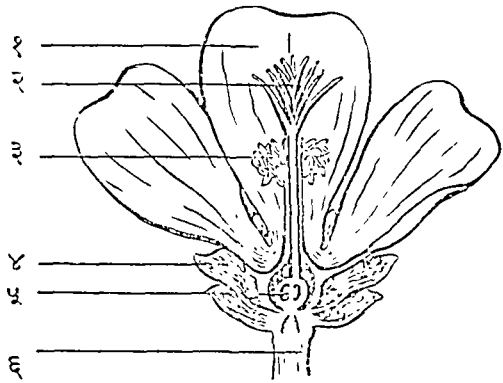
चित्र ७. फूल.
१. पंखड़ी, २. डिम्ब तन्तु, ३. पराग तन्तु, ४. पुष्प पात्र, ५. डिम्बकोश, ६. डंठल.

भीतर चतुर्थ, मादा, भाग होता है। फूल के भीतर अत्यन्त सुरक्षित यह थैली होती है जिसमें डिम्ब होता है; इस थैली का मुँह प्रायः एक नली का आकार लेकर काफी ऊँचा उठ आता है।

५४. इकलैङ्गिक और उभयलैङ्गिक—एक ही फूल में नर और मादा जब दोनों भाग उपस्थित होते हैं तो ऐसे फूल उभयलैङ्गिक पुष्प कहलाते हैं। चने, मटर आदि के फूल उभयलैङ्गिक पुष्प हैं। पर तोरी की बेलों में जो पुष्प आते हैं वे इकलैङ्गिक होते हैं। पुष्प या तो नर पुष्प होता है या मादा पुष्प होता है। हाँ, नर और मादा दोनों पुष्प पृथक् पृथक् एक ही बेल या पौदे में लगते हैं। भंग का पौदा है, जिसमें नर और मादा पुष्प एक पौदे पर नहीं, अलग-अलग पौदों पर आते हैं। और वे पौदे अपने पुष्पों के गुण से नर पौदे और मादा पौदे कहलाते हैं। जब नर तन्तुओं पर लगा हुआ पराग-कण डिम्बकोष की नली के मुँह पर लग जाता है तो कहते हैं कि वह परागित हो गया। डिम्ब कोष की नली के मुँह पर लगे हुए पराग-कण में से एक अंग निकलकर डिम्ब के भीतर प्रवेश कर जाता है और उसी में रह जाता है। इस क्रिया से डिम्ब गर्भित हो जाता है। उसमें एक उत्तेजना आ जाती है। उसमें परिवर्तन होने लगते हैं, वह बढ़ने लगता है और फल का बनना आरम्भ हो जाता है। वह फल जिसके भीतर बीज सुरक्षित रखे रहते हैं।

५५. डिम्ब का गर्भन—साधारणतया अधिकतर फूलों में पराग तन्तु और डिम्ब कोष एक साथ होते हैं। इससे सहज रूप से ही यह विचार मन में उठ सकता है कि किसी फूल की पराग उसी फूल के डिम्ब को परागित और गर्भित करने के काम में आती है। पर वास्तव में चाल इससे उल्टी है। प्रकृति नाना उपायों से इस बात की चेष्टा करती है कि किसी फूल का पराग उसी फूल के डिम्ब को गर्भित न कर पाये। इस कार्य में वह नर और मादा अंगों की स्थिति से सहायता लेती है। बहुत से फूलों में दोनों अंग एक ही समय वयस्क नहीं होते। किसी में पराग पहिले पक जाती है, किसी में डिम्ब पहिले पक जाता है। सम्भावना इसी की अधिक होती है कि डिम्ब यदि गर्भित हो तो किसी अन्य पुष्प की पराग द्वारा गर्भित हो।

५६. वायु और कीट-पतिंग—अन्य पुष्प की पराग डिम्ब तक कैसे पहुँचे? इसके लिए प्रकृति मुख्यतया तीन उपायों का उपयोग करती है। कुछ फूल होते हैं जो पराग के बहुत अधिक कण उत्पन्न करते हैं। हवा चलती है तो वे हवा में उड़ जाते हैं। हवा में उड़ते रहते हैं यदि वे अपनी जाति के किसी मादा अंग के सम्पर्क में आ जाते हैं तो वहाँ ठहर जाते हैं। देवदार और शहतूत के डिम्ब इस प्रकार वायु की सहायता से गर्भित होते हैं। जो पौदे पानी में उगते हैं उनकी पराग पानी पर छिटक जाती है और लहरों तथा बहाव की शक्ति से इधर-उधर बहती फिरती है। जब कोई मादा अंग उनके सम्पर्क में

आता है त उसे परागित करती है। नदियों और सागरों के तट के पुष्पों के डिम्ब जल की सहायता से सैकड़ों मील दूर से आये हुए पराग द्वारा गर्भित किये जा सकते हैं।

५७. योजनाओं का गुम्फन—मादा भाग के परागित होने की यह दोनों विधियाँ महत्त्वपूर्ण अवश्य हैं, पर हमारे ध्यान को जो विधि सब से अधिक आकर्षित करती है, वह रंगीन और सुगन्धित पंखुड़ियों वाले पौदों द्वारा काम में लायी जाती है। इस विधि में प्रकृति ने कुछ जन्तुओं के जीवन को पौदों के जीवन के साथ बड़ी सुन्दरता से गूँथ दिया है। जब तितली फूलों पर बैठती है और भौंरा फूलों पर मँडराता है तो वह कवियों की प्रसन्नता के लिए ऐसा नहीं करते। प्रकृति ने फूलों को रंग और गन्ध इसलिए दिये हैं कि वे कीट-पतिंगों को आकर्षित करें। उसने फूलों के भीतर शहद की गन्धियाँ इसलिए बनाई हैं कि यह कीट-पतिंग शहद के लोभ से फूल के भीतर उतरें। जब शहद की मक्खी शहद लेने के लिए फूल के भीतर जाती है तो पराग उसके शरीर से लग जाती है। इस पराग को लेकर वह दूसरे फूल पर पहुँचती है। वहाँ वह फिर फूल के भीतर उतरती है। अपने शरीर से चिपटी कुछ पराग को वहाँ छोड़ देती है, और उस पुष्प से कुछ पराग लेकर आगे चल देती है। इस प्रकार वह एक पुष्प की पराग को दूसरे पुष्प पर पहुँचाती है और डिम्बों के परागित होने में सहायता करती है।

५८. परजीवी जन्तु—प्रकृति की योजना में पौदे जन्तुओं के भोजन हैं। अनेक छोटे-बड़े जन्तु उन पर जीवन यापन करते हैं। मनुष्य पौदों को अपने लिए उगाता है। जब कोई अन्य छोटा जन्तु उस पौदे पर आ जाता है और उसे हानि पहुँचाने लगता है तो मनुष्य कहता है कि पौदे को बीमारी हो गई है। गेहूँ आदि फसलों पर लाल या काले रंग का चूर्ण-सा लगने लगता है। वह गेहूँ के पौदे का सारा रस पी जाता है। इस बीमारी को रेतुवा या गेरुवा कहते हैं। दूसरे के ऊपर जीवित रहने वाले ऐसे जीव को परजीवी कहते हैं। पेड़ों पर कीड़े-पतिंगे और इल्लियाँ रहती हैं और उनके अंगों को खाकर जीती हैं। हमारे खेतों और बगीचों को यह पर-जीवी, और दूसरे कीट-पतिंगे बहुत बड़ी हानि पहुँचाते हैं।

५९. कीटनाशक और कीटाणुनाशक—इनसे लड़ने के लिए मनुष्य ने बहुत से ऐसे कीटनाशक और कीटाणुनाशक बनाये हैं जो मनुष्य के लिए हानिकर नहीं हैं, और कीटों तथा कीटाणुओं से फसलों की रक्षा के लिए उन पर छिड़के जा सकते हैं।
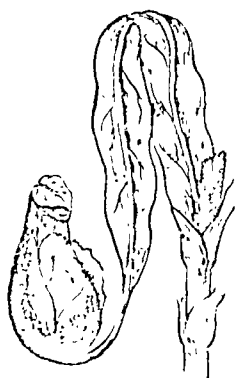
चित्र ८.
जन्तुआहारी पौदा.
पिचर प्लांट या घट-पौदा

६०. जन्तुआहारी पौदे—मुख्यतः बात यही है कि पौदे जन्तुओं के भोजन हैं। पर कालान्तर में कुछ पौदों में भी ऐसा विकास हो गया है कि वे जन्तुओं का भोजन कर सकें। ऐसे पौदे मांसाहारी पौदे कहलाते हैं। इस प्रकार के एक पौदे में दो खुली हुई पत्तियाँ होती हैं। उन पर एक चेपदार पदार्थ लगा होता है। जब कोई कीट आकर उस पर बैठता है तो उसके बैठते ही पत्तियाँ डिब्बी की भाँति बन्द होने लगती हैं। पत्तियों पर उगे हुए रोयें कीट को फँसा लेते हैं। वह उड़ नहीं पाता, उसी में कैद हो जाता है। जब पत्तियाँ बन्द हो जाती हैं तो उनमें से एक पाचक रस निकलता है। कीट के कुछ अंग घुलनशील बन जाते हैं और पत्तियों के छिद्रों द्वारा सोख लिये जाते हैं। जब पत्तियाँ चूसने योग्य सब पदार्थ कीट के शरीर से चूस चुकती हैं, तो वे खुल जाती हैं और कीट के शरीर का अवशेष नीचे गिर पड़ता है।

चित्र ९.
जन्तुआहारी पौदा : नेपेन्थस.

अध्याय ५
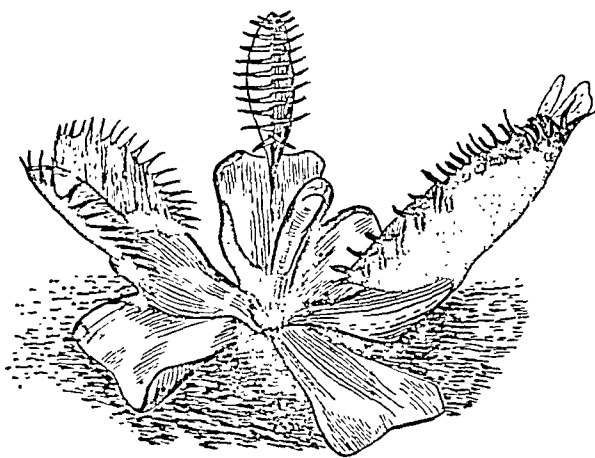
जन्तु और सबसे नवीन

संसार में जो जन्तु हैं उनको साधारणतया तीन भागों में बाँटा गया है। यह तीन विभाग हैं, जलचर, थलचर और नभचर।

६१. जलचर—जलचर जन्तु पानी में रहते हैं। सील, वालरस, मेंढक, कछुआ, मगर आदि के अतिरिक्त दूसरे जीव जल से बाहिर निकाले जाने पर मर जाते हैं। जलचर जन्तुओं में सीपी, सिन्धुकमलिनी आदि जन्तु हैं जो जलाशय की तली में निवास करते हैं और भाँति-भाँति की मछलियाँ हैं, जो सचमुच पानी में रहती हैं जिनके नीचे सदा पानी होता है। जलचर जन्तुओं को तैरने में सहायता देने वाले अंगों की आवश्यकता होती है। पैर उनके लिए उतने आवश्यक नहीं हैं।
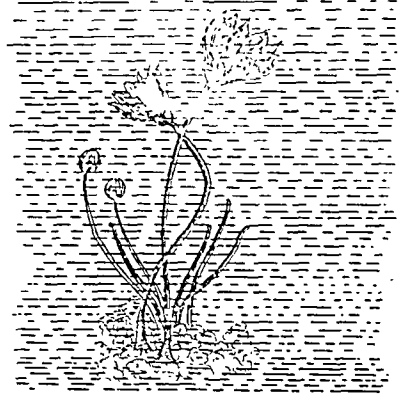
चित्र १०. सिन्धुकमलिनी.

चित्र ११. वालरस.

६२. थलचर—थलचर जन्तु थल या खुश्की पर रहते हैं। थलचर जन्तुओं में चूहे और सिंहबिलों में रहते हैं। हाथी-घोड़े पृथ्वी की धरातल पर रहते हैं और गिरगिट-गिलहरी वृक्षों पर रहते हैं। थल के निवासियों के लिए पैर अत्यन्त आवश्यक है। हाँ, सर्प आदि कुछ जीव ऐसे हैं जिनके पैर नहीं होते और जो रेंगकर चलते हैं।
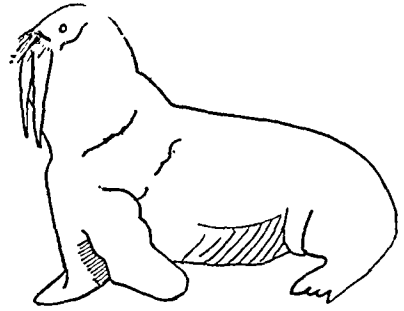
६३. नभचर—जिस प्रकार जलचर जन्तु जल में और थलचर जन्तु थल पर निवास करते हैं, उस प्रकार नभचर जन्तु नभ में निवास नहीं करते। वे धरती के धरातल पर निवास करते हैं। वृक्षों, झाड़ियों, चट्टानों या रेत में अपने घोंसले बनाते हैं। वे केवल इधर से उधर आने-जाने के लिए आकाश-मार्ग का उपयोग करते हैं। क्योंकि वे चलने-फिरने के लिए धरती की धरातल और वायुमण्डल दोनों का उपयोग करते हैं, इसलिए उनके पैर और पंख दोनों होते हैं।

६४. दो पैर और दो पंख—साधारण थलचरों के चार पैर होते हैं। नभचरों के अगले दो पैरों ने पंखों का रूप ले लिया है। मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जिसके अगले पैर अब पैर नहीं रह गये हैं। मनुष्य उनसे बचपन में ही कुछ दिन चलने का काम लेता है। जब वह कुछ बड़ा हो जाता है तो अपने शरीर को इस प्रकार साध लेता है कि उसके चलने-फिरने के लिए केवल दो ही पैर पर्याप्त होते हैं। उसके अगले पैर हाथ बन जाते हैं। उनका क्रियाक्षेत्र दूसरा हो जाता है। मनुष्य के हाथ उसकी क्षमता को बहुत बढ़ा देते हैं। साधारण जन्तु होते हुए भी वह इस प्रकार प्रकृति की योजना में एक विशेष महत्त्व प्राप्त कर लेता है।

६५. अनुभव-शक्ति—मनुष्य अपने जीवन में अनेक क्रियाएँ करता है। वह चलता है, गेंद की भाँति लुढ़कता नहीं। उसके चलने की शक्ति उसके शरीर के भीतर से आती है।

इसी प्रकार उसमें अनुभव करने की भी शक्ति है। वह प्रकाश की तरंगों का अनुभव करता है तो उसे दिखाई देता है। वह ध्वनि की तरंगों का अनुभव करता है तो उसे सुनाई देता है। वह वातावरण में व्याप्त उड़नशील कणों का अनुभव करता है तो उसे सुगन्धि-दुर्गन्धि अनुभव होती है। वह जीभ के द्वारा अनेक भोजनों का अनुभव करता है तो उसे कड़ुवे, फीके, नमकीन, कसैले, मीठे आदि स्वादों का ज्ञान होता है। उसकी त्वचा या खाल में शक्ति है कि वह गर्मी-सर्दी, कोमलता-कठोरता, चिकनाई और खुरदुरेपन का अनुभव कर सके। मनुष्य के चोट लगती है तो उसे दुख होता है।

६६. शारीरिक वृद्धि—मनुष्य के शरीर में अपने आप बढ़ने की शक्ति है। यह बढ़ना मिश्री के रवे या मणि का बढ़ना नहीं है। मनुष्य भोजन खाता है। शरीर उसमें से कुछ कणों को ले लेता है। इन कणों को खण्डित करता है और उनसे फिर उन कणों का निर्माण करता है जो उसके शरीर के लिए आवश्यक हैं। भोजन के जिस अंश की मनुष्य के शरीर को आवश्यकता नहीं होती, उसे मनुष्य का शरीर अपने से बाहिर निकाल देता है।

मनुष्य साँस लेता है। वायु में नाइट्रोजन के साथ मिली हुई जो आक्सीजन है वह उसके नथुनों द्वारा उसके फेफड़े में जाती है। वहाँ वह रक्त से मिलती है। शुद्ध आक्सीजन रक्त में रह जाती है और कार्बन-द्वि-आक्साइड, जो रक्त की अशुद्धता और आक्सीजन के मेल से बनती है, बाहिर निकल आती है।

६७. प्रजनन—मनुष्य में प्रजनन की शक्ति है। उसका शरीर अपने में से अन्य मनुष्य को जन्म दे सकता है। उसका शिशु उसी की भाँति मनुष्य होता है। उसमें वे सब गुण और वे सब क्षमतायें होती हैं जो उसके माता-पिता में पाई जाती हैं।

६८. जीवित कोठा—मनुष्य के शरीर के जो गुण और क्षमतायें हैं वे सभी जन्तुओं के शरीर में पाई जाती हैं। वे गुण और क्षमतायें जन्तुओं के गुण और उनकी क्षमतायें हैं। जन्तुओं के शरीर कोठों के बने हैं। मनुष्य के शरीर में अगणित और भाँति-भाँति के कोठे हैं। पर ऐसे जन्तु भी हैं जिनका शरीर एक ही कोठे का बना हुआ है।

चित्र १२. अमीबा.

एक कोठे का बना एक जन्तु है जिसे अमीबा कहते हैं। यह इतना छोटा होता है कि लगभग दो सौ अमीबे एक पिन के सिरे पर रखे जा सकते हैं। जन्तुशास्त्र के विद्यार्थी अमीबे को सूक्ष्म दर्शक के द्वारा देखते हैं। यह गाढ़े तेल की नन्हीं बूँद के समान होता है। यह जीवन की वे सभी क्रियायें करता है जो मनुष्य करता है। पर इसके न हाथ होते हैं, न पैर। कान, नाक, आँख, मुँह भी नहीं होते। और तो और इसके शरीर का न अगला-पिछला भाग निश्चित होता है और न उपरला-निचला भाग। यह पानी में रहता है। इसका शरीर जैसे पानी में बहता फिरता है। प्रजनन के समय एक अमीबे का शरीर लम्बोतरा होकर दो खण्डों में टूट जाता है और दो अमीबे बन जाते हैं। जीवन में जो क्रियायें होती हैं उन सब को सफलतापूर्वक करने की सामर्थ्य अमीबे के इस इककोटे अस्तित्व में हैं।

एक दूसरा इककोटे का जन्तु है पैरामीसियम। चप्पल के आकार का बड़ा चंचल। यह भी सूक्ष्म दर्शक द्वारा देखा जाता है। यह अमीबे की भाँति तेल की सी बूँद नहीं होता इसके शरीर का अगला-पिछला तथा निचला-उपरला भाग निश्चित होता है। शरीर के चारों ओर एक निश्चित खोल होता है। उसके मुँह का स्थान भी नियत होता है। शरीर की इस निश्चितता के अतिरिक्त उसके शरीर पर अत्यन्त लघु-लघु बहुत से रोयें होते हैं। इन रोयों को लहराकर यह जन्तु पानी में इधर-उधर तैरता फिरता है।
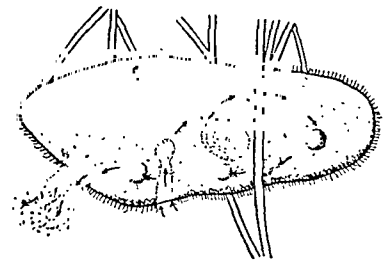
चित्र १३. पैरामीसियम.

अमीबा और पैरामीसियम इककोटी जन्तु हैं। जंतुओं के अध्ययन में हमें कुछ ऐसे जंतु मिलते हैं जिनकी शरीर-रचना को देखकर ऐसा लगता है कि इनके शरीर में कोठे आपस में मिलकर रहने का प्रयत्न कर रहे हैं।

६९. स्पंज—इस प्रकार का शरीर हमें स्पंज में प्राप्त होता है। स्पंज को समन्दर झाग या पानी सोख भी कहते हैं। इसमें जन्तु कोठे परस्पर मिले हुए और एक के ऊपर एक चिने हुए होते हैं। प्रत्येक कोठा अपना जीवन स्वतन्त्रता से बिताता है। वह अपने जीवन से सम्बन्ध रखने वाली सब क्रियायें स्वयं ही करता है। मनुष्य के शरीर में कोठों

में श्रम-विभाजन हो गया है। एक कोठा देखता है, दूसरा सुनाता है, तीसरा सुगन्धि-दुर्गन्धि अनुभव करता है, चौथा हड्डी बनाता है, पाँचवाँ त्वचा बनाता है। जितने शारीरिक कार्य हैं उतने प्रकार के कोठे बन गये हैं। स्पंज के शरीर में ऐसा श्रम-विभाजन नहीं पाया जाता।
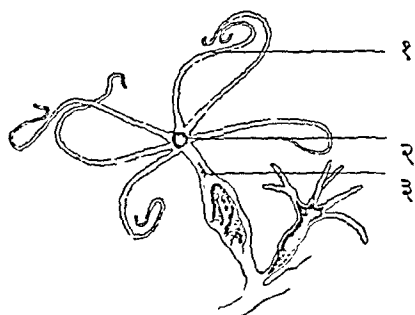
चित्र १४. हाइड्रा
१. हाथ का काम देने वाले तन्तु,
२. मुख, ३. भोजन.

७०. मूँगा—स्पंज से आगे इस अध्ययन में मूंगे का जन्तु आता है। बाजार में जो मूँगा मिलता है वह लाल या सफ़ेद रंग का होता है, और पत्थर-सा कठोर होता है। इस कठोर पदार्थ के भीतर एक पतला-सा छेद होता है। मूँगे का जन्तु इसी छेद में निवास करता है। मूँगे के जन्तु का शरीर भी अन्य जन्तुओं के शरीरों की भाँति जन्तु कोठों का बना है। पर इस जन्तु के शरीर में कोठों में काफी श्रम-विभाजन हो गया है। यह जन्तु अमीबा और स्पंज की भाँति बेबस नहीं है। इसके मुख के चारों ओर कुछ तन्तु होते हैं, जिनसे वह हाथों का काम लेता है। यह तन्तु शिकार पकड़कर मुँह में डालते हैं, तो उसके शरीर में भीतर स्थित कोठे उसे पचाने और उसमें से पोषक तत्व सोखने का काम करते हैं।

७१. श्रम विभाजन—मूँगे के जन्तु से आगे हम जिन जन्तुवों का अध्ययन करते हैं उनमें कोठों का श्रम विभाजन बढ़ता जाता है और उनकी विशेष प्रकार के काम करने की योग्यता भी बढ़ती जाती है। इस प्रकार के जन्तुवों में चुन्ने तथा अन्य इसी प्रकार के कृमि हैं, जो पशुवों और मनुष्य में रोग का कारण बनते हैं। केंचुवे हैं, जिनका शरीर अनेकों खंडों में बँटा होता है। केंकडे हैं, गिजाइयाँ हैं, मकड़ियाँ और कीट-पतिंग हैं। घोंघे हैं, सीपियाँ हैं और शंख हैं। तारा-मछली है और सिन्धु-ककड़ियाँ हैं। इन जन्तुवों में से अधिकांश जन्तु जल के वासी हैं। इन जन्तुवों के शरीर में रीढ़ नहीं होती इसलिए ये जन्तु रीढ़हीन या मेरुदंडहीन कहलाते हैं।

७२. रीढ़हीन और रीढ़वान—रीढ़हीन जन्तुवों के अतिरिक्त जो रीढ़वान जन्तु हैं उनमें जन्तु कोठों का श्रम विभाजन अधिकाधिक होता गया है और प्रत्येक कोठे की विशेष योग्यता में भी वृद्धि होती गई है। रीढ़वान जन्तुवों में मछलियाँ हैं; मेढ़क हैं; साँप, कछुवे मगर और छिपकली हैं; पक्षी हैं; और वे जन्तु हैं जो अपने नवजातों को दूध पिलाते हैं।

७३. मछलियाँ—यह सबसे प्राचीन रीढ़वान हैं। वे गलफड़ों से साँस लेती हैं। उनके हाथ-पैर नहीं, पंख होते हैं। उनकी जीभ, यदि होती है तो हिलती नहीं। अधिक

विकसित मछलिय में गलफड़ों के साथ-साथ फेफड़ों की उपस्थिति भी पाई जाती है।

चित्र १५. मेढ़क-मच्छी का मेढ़क मे परिवर्तन.

७४. मेढ़क—मेढ़क मछली की भाँति पानी में जीवन आरम्भ करता है। उस समय वह मेढ़क मच्छी के रूप में होता है। उसके पूँछ होती है, पैर नहीं होते। वह गलफड़ों से साँस लेता है। कुछ समय पश्चात् उसकी पूँछ उसके शरीर में समाने लगती है। वह थल पर आ जाता है। उसके पैर निकल आते हैं और वह फेफड़ों से साँस लेने लगता है।

७५. सर्प—सर्प, छिपकली आदि समय-समय पर अपनी खाल बदलते रहते हैं। इसके अंडे मछली और मेढ़क की भाँति नन्हें-नन्हें नहीं, बड़े-बड़े होते हैं।

७६. शीतल रक्तधारी और उष्ण रक्तधारी—मछलियाँ, मेढ़क और सर्प छिपकली आदि शीतल रक्त वाले जन्तु कहलाते हैं। इनके रक्त का तापमान उनके चारों ओर की परिस्थिति के तापमान के अनुसार बदलता रहता है।

रीढ़वान जन्तुवों में पक्षी हैं। वे बहुत सी बातों में सर्प छिपकली वर्ग के जन्तुवों से मिलते हैं। उनके पर और पंख होते हैं। वे अंडे देते हैं।

७७. स्तनधारी—रीढ़वान जन्तुवों में सब से अन्तिम वर्ग उन जन्तुवों का है, जो अपने नवजातों को दूध पिलाते हैं। कांगरू, सिंह, सील ह्वेल, हाथी, खरगोश, चमगीदड़, चूहा, बन्दर और मनुष्य; ये सभी इस वर्ग के सदस्य हैं। इन जन्तुवों के शरीर पर बाल उगते हैं। इन जन्तुवों को पसीना आता है। और इनका मस्तिष्क बहुत बड़ा होता है। ये स्तनधारी कहलाते हैं।

पक्षी और स्तनधारी जन्तु उष्ण रक्त वाले जन्तु कहलाते हैं। उनके शरीर का तापमान सदा एक-सा रहता है। वह चारों ओर के वातावरण के तापमान के साथ बदलता नहीं।

चित्र १६. ह्वेलें.

७८. विशालतम जन्तु—रीढ़-हीन जन्तुओं में सब से विशाल जन्तु एक लम्बोतरा शंख होता है, जो स्क्विड कहलाता है। यह गहिरे सागर में, उत्तरी एटलांटिक में रहता है और पचास फुट तक लम्बा हो जाता है। रीढ़वान जन्तुओं में सबसे विशाल जन्तु नीलम-ह्वेल होती

है। जो नब्बे फीट तक लम्बी और सौ टन तक भारी हो जाती है। सृष्टि में इतना भारी जन्तु कोई दूसरा कभी नहीं हुआ। हाँ, चट्टानों में दबे कुछ जन्तुओं के अवशेष मिले हैं जो छिपकली कुल के थे और इस ह्वेल से अधिक लम्बे थे। और समुद्र में कुछ पतले-पतले कीड़े होते हैं जो सौ फीट से भी अधिक लम्बे हो जाते हैं।

७६. चट्टानों में जीव अवशेष—चट्टानों में दबे जो जन्तुओं के शरीर, उनके अवशेष अथवा उनके चिन्ह मिलते हैं। उनमें सबसे प्राचीन चिन्ह सरल शरीर वाले रीढ़-हीन जन्तुओं के हैं। जैसे-जैसे चट्टानों की आयु कम होती जाती है वैसे-वैसे शरीरों की जटिलता बढ़ती जाती है। आज जितने जन्तु वर्तमान हैं उनके सरल और जटिल शरीरों का हम अध्ययन करते हैं। इस अध्ययन और चट्टानों में प्राप्त साक्षी के आधार पर जन्तुशास्त्र के विद्वान इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सृष्टि के आरम्भ में जन्तुओं के शरीर सरल थे। कोठों में श्रम-विभाजन और विशेष योग्यता नहीं थी। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया और जीवन को नयी परिस्थितियाँ मिलती गयीं, त्यों-त्यों ऐसे जीवों का विकास होता गया जिनके शरीर नवीन परिस्थितियों में सफलतापूर्वक रहने योग्य थे।

८०. जीन—जन्तु के शरीरों में कोठे हैं। इन कोठों में अत्यन्त लघु-लघु कण हैं, जिन्हें अंग्रेजी में जीन कहते हैं। माता-पिता और सन्तान में जो समानता होती है उसका नियमन यह जीन ही करते हैं, इसलिए इन्हें पैत्र्यक कहते हैं। कभी-कभी इन जीनों में अचानक परिवर्तन हो जाते हैं और हम पाते हैं कि सन्तान के शरीर के कुछ गुण माता-पिता के शरीरों में भिन्न उत्पन्न हो जाते हैं। यह भिन्न गुण वाली सन्तान यदि परिस्थितियों में जीवन के अधिक योग्य होती है तो जीवित बच जाती है नहीं तो मिट जाती है। अनुमाना जाता है कि पैत्र्यकों और परिस्थितियों के इस खेल से जन्तुओं की नवीन जातियाँ उत्पन्न हुई हैं। इन जातियों में से बहुत सी जीवित हैं और बहुत सी मिट गई हैं। इस प्रकार जन्तु जातियों के बनने का जो सिद्धान्त है उसे हमें जन्तुओं के विकास का सिद्धान्त कहते हैं।

८१. मनुष्य—मनुष्य संसार का सबसे जटिल और सबसे नवीन प्राणी है। विकास सिद्धान्त के अनुसार उसका विकास बन्दर-कुल के जन्तु से हुआ है। साधारणतया कहा जाता है कि मनुष्य के पुरखा बन्दर थे। इस पर कछ लोग पूछते हैं कि आज जो बन्दर देखे और पाये जाते हैं उनमें से किस से मनुष्य उत्पन्न हुआ है? यह प्रश्न ठीक नहीं है। आज जो बन्दर मिलते हैं उनमें से किसी से भी मनुष्य उत्पन्न नहीं हुआ। जिस बन्दर जाति से मनुष्य उत्पन्न हुआ है वह तो मनुष्य में बदल गई है। वह अब नहीं मिलती। उसके स्थान पर मनुष्य जाति है। कुछ विद्वानों का विचार है कि मनुष्य के पुरखा का विकास उत्तरी भारत के शिवालिक क्षेत्र में हुआ।

८२. मस्तिष्क—मनुष्य में मस्तिष्क का विकास हुआ। उसमें अनुभव से लाभ उठाने की क्षमता आई। मनुष्य जो आज है वह एकाएक नहीं बन गया है। उसकी तीन जातियाँ

मिट चुकी हैं। एक जाति के मनुष्य का नीचे का जबड़ा दक्षिणी जर्मनी में मिलता है।

८३. हीडिलवर्ग-मनुष्य—इस अकेले जबड़े की बनावट के आधार पर उस मनुष्य की कल्पना की गई है, और उसे हीडिलवर्ग-मनुष्य कहा गया है। हीडिलवर्ग इसलिए कि वहाँ वह जबड़ा मिला है। दूसरी जाति की खोपड़ी रोडेशिया में प्राप्त हुई है।

८ . रोडेशिया-मनुष्य—इस खोपड़ी की बनावट के आधार पर इस जाति की कल्पना की गई है और उसे रोडेशिया-मनुष्य कहा गया है। तीसरी जाति के अवशेष यूरोप में अनेक स्थानों पर मिलते हैं। इनके साथ उनके द्वारा उपयोग किये जाने वाले बहुत से पत्थर के हथियार भी पाये गये हैं। इनको नियेन्दरथल घाटी के नाम से नियेन्दरथल-मनुष्य कहते हैं।

चित्र १७. नियेन्दरथल मनुष्य.

८५. होटेन्टोट—आजकल सबसे अल्प विकसित मनुष्य आस्ट्रेलिया के आदिम निवासी हैं। इनकी उत्पत्ति का स्थान सम्भवतया भारतवर्ष है, जहाँ से वे पूर्व-दक्षिण की ओर चले गये हैं। यह होटेन्टोट कहलाते हैं। भारत की कुछ जंगली जातियाँ, लंका के वेद्दा और पूर्वी पों के सकाई इसी जाति के हैं।

८६. हब्शी—इनके पश्चात् हब्शी हैं, जो एशिया में उत्पन्न हुए और आजकल अधिकतर अफ्रीका में निवास करते हैं। सपाट घुँघराले बाल उनकी विशेषता है। इस जाति के दो विभाग हो गये हैं। एक विभाग के मनुष्य बौने होते हैं और दूसरे विभाग के मनुष्य ऊँचे। अफ्रीका के अधिकतर हब्शी ऊँचे होते हैं। हब्शी जाति के रक्त का प्रभाव एशिया के विभिन्न देशों और पूर्वी द्वीपों में भी पाया जाता है।

चित्र १८. होटेन्टोट.

उत्पत्ति और विकास के विचार से मनुष्य-जाति का सबसे महत्त्वपूर्ण भाग एशिया, यूरोप और उत्तर-पूर्वी अफ्रीका में निवास करता है। जो मनुष्य आज अमरीका में बसते हैं, वे इस पुरानी दुनिया से ही नई दुनिया में गये हैं। इन जातियों की त्वचा का रंग हल्का है। उनका मस्तिष्क अधिक विकसित है और वे अधिक बुद्धिमान् हैं। इस विभाग के अन्तर्गत चार जातियाँ हैं।

८७. मंगोल—मंगोल या पीली जाति हिमालय से उत्तरी एशिया, मलाया, पूर्वी द्वीपसमूह, फिलीपाइन और जापान में निवास करती है। यह जाति अफ्रीका के पूर्व जो मैडागास्कर द्वीप है उसमें भी पहुँच गई है। रूस, लैपलैंड, फिनलैंड और बल्गेरिया के निवासियों में भी इस जाति का अंश पाया जाता है। एस्कीमो इसी जाति की एक शाखा जान पड़ती है।

८८. आल्पाइन—मध्यजाति या आल्पाइन जाति कैस्पियन सागर के आस-पास मुख्य जाति में से विकसित हुई। इस जाति के शरीर बलिष्ठ, सिर चौड़े, जबड़े शक्तिशाली और नाक ऊँची होती है। इस जाति ने आरमीनिया तथा फिलिस्तीन के निकट निवास करने वाली जातियों को बनाने में बड़ा भाग लिया है, क्योंकि यह यूरोप में ऊँची भूमि पर रहती है इसलिए आल्पाइन जाति कहलाती है। आल्प्स यूरोप के सबसे बड़े पर्वत हैं। ये लोग ब्रिटेन तक यूरोप के समुद्र के किनारे पर फैले हुए हैं। ये लोग पूर्व की ओर भी बढ़े और मंगोल लोगों में घुलते-मिलते साइबेरिया तक पहुँच गये। वे पहाड़ी मार्गों से भारतवर्ष में भी आये, यहाँ के निवासियों से मिले और उन पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया।

८९. ताम्रवर्णी—ताम्रवर्णी या भूमध्यसागरी जाति का पहला घर पूर्वी अफ्रीका और दक्षिण-पश्चिमी एशिया में बना। यह जाति मध्य जाति की अपेक्षा कम बलिष्ठ थी। इसकी खोपड़ी सँकरी थी, बाल काले थे और रंग श्यामल था। इसने प्राचीन मिश्रियों की नींव डाली। अबीसीनियावासियों और अरबों को जन्म दिया। काले रंग की जातियों के साथ स्वतन्त्रता से मिली-जुली। यह पश्चिम में ब्रिटिश द्वीपों तक पहुँची और पूर्व में भारत, मलाया तथा पूर्वी द्वीपों तक फैल गई। भारत में इसने द्रविड़ जाति का निर्माण किया। लगता है कि इसकी एक शाखा तुर्किस्तान होते हुए साइबेरिया भी गई।

९०. भूरी जाति—उत्तरी या भूरी जाति का उदय उत्तरी यूरोप में हुआ। यह स्काटलैंड, स्वीडन, नार्वे और उत्तरी जर्मनी में पाई जाती है। इनका वर्ण और इनके बाल भूरे होते हैं। यूरोप और ब्रिटेन के अधिकांश निवासी इस भूरी और ऊपर लिखी ताम्रवर्णी जाति के मिश्रण माने जा सकते हैं।

९१. शुद्ध जाति—यहाँ जिन जातियों का वर्णन किया गया है, वे आज संसार में अपने शुद्ध रूप में नहीं पाई जातीं। संसार की अधिकतर विभिन्न जातियाँ इन जातियों

के जटिल मिश्रण से निर्मित हुई हैं। जो लोग आज सबसे अधिक शुद्ध रक्त का दावा कर सकते हैं वे आस्ट्रेलिया के आदिम निवासी हैं।

६२. आयुध—मनुष्य की उत्पत्ति हुई तो अन्य जन्तुओं की भाँति उसके सामने भी अनेक समस्याएँ थीं। सबसे कठिन और सबसे पहली समस्या थी आत्म-रक्षा की। वह शेर, भेड़िये, रीछ और हाथियों से अपनी रक्षा कैसे करे? उसने पत्थर के हथियार बनाये और उनमें हड्डियों के बेंटे लगाये। उसने आग जलाने की रीति जानी तो धातुओं का उपयोग किया। उसके हथियार पहले पीतल-काँसे के और फिर लोहे के बनने लगे। पहले वह कीड़े-मकोड़ों और पशुओं का शिकार करता था। फल खाता था। कालान्तर उसने पशुओं को पालना सीख लिया। वह अपने पशुओं को लेकर चरागाह की खोज में एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमता फिरता था। जब उसे पौदों को पालना आ गया तो वह खेती करने लगा और एक स्थान पर घर बनाकर रहने लगा। गाँव और नगरों का उदय हुआ। वह अपने अनुभव से ज्ञान प्राप्त करता गया और उसे अपने उपयोग में लाता गया। ज्ञान के अधिकाधिक उपयोग से उसकी क्षमता बहुत बढ़ गई। उसने आधुनिक सभ्यता का विकास किया। उसने नगरों को पानी पर ही नहीं तैराया, मोहल्लों को आकाश में उड़ा दिया। वह थलचर था, अपने ज्ञान की सहायता से जलचर और नभचर भी बन गया।

६३. परिस्थिति—मनुष्य जैसी परिस्थितियों में रहता है उसी के अनुसार उसका रहन-सहन और उसकी वेश-भूषा बन जाती है। गर्मी और सर्दी, पानी की अधिकता और पानी का अभाव, हिम और रेगिस्तान सभी उसके जीवन को प्रभावित करते हैं।

६४. हिम प्रदेश—बर्फीले प्रदेश के निवासी—एस्कीमो—धरती में गड़हा बनाकर उसको बर्फ की शिलाओं से ढक देते हैं और इस प्रकार अपना घर बनाते हैं। ये अपने घरों में रेंगकर घुसते हैं। ये सील और वालरस जैसे समुद्री जन्तुओं की खालों के वस्त्र पहिनते हैं और उनका मांस खाते हैं। इन्हें ताजा रक्त पीना बहुत पसन्द है। ये धनुषबाण द्वारा रेनडियर, रीछ तथा अन्य पशुओं का भी शिकार करते हैं। ये कच्चा मांस खाते हैं। गर्मी के दिनों में जब बर्फ पिघलने लगती है तो वे तम्बुओं में रहते हैं। ये तम्बू भी सील और वालरस की खालों को सींकर तैयार किये जाते हैं। इनके हथियार अधिकतर हड्डियों के ही बने होते हैं।

६५. गर्म प्रदेश—अफ्रीका के उन स्थानों पर जहाँ गर्मी खूब पड़ती है और वर्षा भी खूब होती है, बड़े सघन वन पाये जाते हैं। इन वनों में बड़ी घमस रहती है। शरीर से सदा पसीना बहता रहता है। इन वनों में हब्शी जाति के बौने मनुष्य निवास करते हैं। इनकी ऊँचाई एक साधारण चौदह वर्ष के लड़के की ऊँचाई से अधिक नहीं होती। ये डालियों और पत्तियों से अपनी झोंपड़ी बनाते हैं। दरवाजा नीचा होता है। बौना अपनी

झोंपड़ियों में रेंगकर घुसता है। ये बौने बहुत अच्छे तीरन्दाज होते हैं। ये बड़े-बड़े पशुओं का शिकार कर लेते हैं और मांस को भूनकर खाते हैं।

अरब और सहारा के रेगिस्तानों के निवासी बद्दू कहलाते हैं। रेगिस्तान में जहाँ पानी पाया जाता है वहीं ये घर बनाकर निवास करते हैं। ये भेड़, बकरी, ऊँट पालते हैं, घोड़ों पर सवारी करते हैं, खजूर बोते हैं। मांस और दूध के अतिरिक्त खजूर इनका मुख्य भोजन है। भोजन की कमी के कारण ये लोग अक्सर घोड़ों पर चढ़कर जीविका की खोज में घूमते फिरते हैं।

६६. मध्य अफ्रीका—मध्य अफ्रीका के निवासी हब्शियों का रंग काला होता है। इनके मोटे-मोटे बाल घुँघराले और ऊन जैसे होते हैं। नाक चपटी होती है। गोरों और हब्शियों के विवाह-सम्बन्ध होने से जो जाति पैदा हुई है वह बाँटू कहलाती है। बाँटू लोग हब्शियों जैसे काले नहीं होते। न उनके ओठ ही हब्शियों के ओठों की भाँति मोटे होते हैं। मध्य अफ्रीका में बड़ी भयंकर गर्मी पड़ती है, इसलिए बहुत से हब्शी बिल्कुल नंगे रहते हैं। जो कुछ पहिनते हैं वह कमर में चमड़े या वृक्ष की छाल का टुकड़ा लपेटे रहते हैं। इनको गहनों का बड़ा शौक होता है। हड्डियाँ और कौड़ियाँ गहनों की भाँति इस्तेमाल की जाती हैं। इन्हें गुदना गुदाने का भी बड़ा शौक होता है। ये अच्छे शिकारी होते हैं, पशु पालते हैं, खेती करते हैं और लोहा शुद्ध करके उससे भाँति-भाँति की वस्तुएँ बनाते हैं।

६७. मध्य एशिया—मध्य एशिया किरगिजों का देश है। यहाँ पेड़ और झाड़ियाँ नहीं होतीं। जहाँ तक देखो घुटनों ऊँची घास दिखाई देती है। वर्षा काफी नहीं होती। न शिकार की सुविधा है न खेती की। ये पशु पालते हैं। अपने पशुओं को लिये इधर-उधर घूमते रहते हैं। एस्कीमो सील-वालरस की खालों के तम्बू बनाते हैं। बद्दू ऊँटों के चमड़ों के तम्बू बनाते हैं तो किरगिज अपने पालतू पशुओं की खाल के तम्बू बनाते हैं। किरगिजों में आपस में चोरी करने वालों को मौत की सजा दी जाती है। किरगिज स्त्रियों को शृंगार का बड़ा शौक होता है। ये अपने चेहरों को रंगती हैं, और पाउडर भी लगाती हैं।

६८. तिब्बत—हिमालय के उस पार तिब्बत है। वहाँ के लोग मंगोल जाति के हैं। तिब्बती लोगों के दाढ़ी-मूँछों के बाल वैसे ही नहीं उगते, और जो उगते भी हैं उनको उखाड़ फेंकने के लिए वे सदा अपने हाथ में चिमटी रखते हैं। तिब्बतनिवासियों का मुख्य व्यवसाय पशु-पालन और खेती है। तिब्बत में गाय जैसा एक पशु होता है जिसके शरीर पर लम्बे-लम्बे बाल होते हैं। उसे याक कहते हैं। तिब्बत में रिवाज है कि एक स्त्री के बहुत से पति होते हैं। इन लोगों के परिवार में स्त्री ही मुखिया होती है।

६६. चीन—तिब्बत के उत्तर में चीन देश है। यहाँ के निवासी अत्यन्त प्राचीन काल से सभ्य हैं। सबसे पहले चीन में ही छापने की कला का आविष्कार हुवा। चीनियों ने बहुत

पुराने समय में कागज़ बनाया और पुस्तकें छापीं। यहाँ ही दिग्दर्शक और कुतुबनुमा बना। रेशम के वस्त्र भी सबसे पहिले यहीं बुने गये। चीन का मुख्य व्यवसाय खेती है। यहाँ चाय बहुत उपजती है और बाँस से बड़ा काम लिया जाता है। चीन में पशु कम हैं। गाय-बैल नहीं के बराबर हैं। हल और गाड़ियों में पशुओं के स्थान पर मनुष्य को जुतना होता है। चीनियों ने बहुत वर्ष हुए अपनी रक्षा के लिए पन्द्रह सौ मील लम्बी एक दीवार बनाई थी। यह तीस फीट ऊँची और पचास फीट मोटी दीवार आज भी खड़ी है। वह मनुष्य की महान् कृतियों तथा संसार के आश्चर्यों में से एक है।

१००. जापान—जापान चीन के पूर्व में है। यह भूकम्प और ज्वालामुखी का प्रदेश है। यह एक हरा-भरा देश है। यहाँ पानी की कमी नहीं है। जापान एशिया का सबसे उन्नत देश है। यहाँ प्रत्येक नगर में बिजली की ट्राम और रेलगाड़ियाँ हैं। यहाँ फूल बहुत होते हैं और जापानियों को फूलों से बड़ा प्रेम है। यहाँ के लोग बहुत मेहनती हैं। वे मुख्यतः मछली-चावल खाते हैं और बिना चीनी तथा दूध की चाय पीते हैं। ये लोग बड़े शिष्टाचार प्रेमी होते हैं। ये लोग बच्चों को गोद में नहीं लेते, पीठ पर बाँधते हैं। जापान में भूकम्प बहुत आते हैं, मकान गिर पड़ते हैं और धन-जन की हानि होती है। हानि कम से कम हो, इसलिए मकान बहुत हल्के बनाये जाते हैं। छत और दीवारें कागज या हल्की लकड़ी की होती हैं। जापानी घर उठाकर बड़ी सरलता से एक स्थान से दूसरे स्थान पर रखे जा सकते हैं।

१०१. हालैंड—मनुष्य की चतुराई और उसकी लगन जिस देश के जीवन में सबसे अधिक दिखाई देती है, वह देश है हालैंड। साधारणतया समुद्र गहराई में होता है और थल ऊँचाई पर। पर हालैंड के आस-पास का समुद्र ऊँचाई पर है और थल नीचाई में। हालैंड भयंकर दलदलों का क्षेत्र था। वहाँ के निवासियों ने समुद्र से चलने वाली हवा से सहायता ली। उसकी शक्ति से पानी फेंकने के पम्प चलाये। थोड़ा-थोड़ा करके दलदलों का पानी खींच दिया और एक दीवार बनाकर समुद्र के पानी को भीतर आने से रोक दिया। हालैंड की नदियाँ और नहरें भी साधारण धरती के धरातल से ऊँची हैं और दो दीवारों के बीच में बहती हैं। हालैंड के निवासी समुद्र और नदियों के इन बाँधों की बड़ी सतर्कता से रक्षा करते हैं। डच खेती करते हैं, पर उनका प्रसिद्ध व्यवसाय दूध-दही-उत्पादन है। हालैंड की स्त्रियाँ बहुत मेहनती होती हैं और अपने घरों में स्वच्छता को हद कर देती हैं।

मनुष्य अपने चारों ओर जिन वस्तुओं को देखता है उन्हीं का जीवन में उपयोग करता है। परिस्थितियों से अनुभव प्राप्त करके वह अपने जीवन को उनके अनुकूल बनाने का प्रयत्न करता है। पर जैसे-जैसे उसका ज्ञान बढ़ता जाता है उसकी सामर्थ्य भी बढ़ती जाती है। परिस्थिति उसके वश में आती जाती है, और वह अपने जीवन के अनुसार परिस्थितियों में परिवर्तन करना आरम्भ कर देता है।

अध्याय ६

मनुष्य का शरीर

१०२. जीवित और अजीवित—मनुष्य का शरीर त्वचा से ढँका है। इस त्वचा में नन्हे छेद हैं जिनमें होकर पसीना निकलता है। त्वचा के ऊपर रोम होते हैं। सिर के ऊपर यह रोम बाल बन जाते हैं, नाक के नीचे मूँछ और ठोडी पर दाढ़ी। उँगलियों और अँगूठों के अग्रभाग पर त्वचा नहीं होती, नख होते हैं। जो नख उँगलियों से तनिक बढ़कर सूख-सा जाता है उसे काटने में पीड़ा नहीं होती। बालों और रोमों के काटने में भी पीड़ा नहीं होती। बढ़े हुए नख और रोम मनुष्य-शरीर के वे भाग हैं जिनमें अनुभव करने की शक्ति नहीं होती। यह मनुष्य शरीर के अजीवित भाग हैं।

१०३. क्षमता—हम जो चाहते हैं वह सभी अपने शरीर की सहायता से कर लेते हैं, ऐसा विचार बहुत से लोगों का है। पर यह बात सही नहीं है। हाथ की उँगलियाँ केवल हथेली की ओर भीतर को ही मुड़ सकती हैं बाहिर को नहीं। कोहनी पर हमारा हाथ भीतर को ही मुड़ता है, बाहिर को नहीं और उधर घुटने हैं जहाँ से हमारा पैर केवल पीछे को ही मुड़ सकता है। मनुष्य को इतनी ही विवशता नहीं है। वह यदि अपने हाथ को कलाई और कोहनी के बीच में कहीं पर मोड़ना चाहे तो भी नहीं मुड़ सकता। हमारा हाथ कलाई और कोहनी के बीच में बहुत दृढ़ है।

१०४. लचक—शरीर में हमें स्थिरता और लचक दोनों चाहिएँ। प्रकृति ने हड्डियाँ या अस्थियाँ बनाकर शरीर के आकार को स्थिरता और दृढ़ता प्रदान की है। और इन अस्थियों के बीच में जोड़ डालकर भिन्न अंगों को लचक दी है। हड्डियों की सन्धि बनाने के लिए उसने मांसपेशियों का उपयोग किया है। इन मांसपेशियों और अस्थियों को भोजन रक्त के द्वारा पहुँचाया जाता है। शरीर के विभिन्न भागों में रक्त पहुँचाने के लिए हृदय से जो नालियाँ निकलती हैं उन्हें धमनियाँ कहते हैं। जब हम अपनी कलाई पर अँगूठे की जड़ में नाड़ी पर हाथ रखते हैं तो धमनी की धमक अनुभव करते हैं। नलियाँ होती हैं जो शरीर के विभिन्न अंगों से रक्त को शुद्ध होने के लिए फिर हृदय में ले जाती हैं। अशुद्ध रक्त हृदय मे फेफड़ों में शुद्ध होने के लिए जाता है। वहाँ से हृदय में लौटता है और फिर शरीर में बँटता है। ये नीले रंग की नलियाँ हाथ-पैरों में खाल के पास उभरी हुई दिखाई देती हैं, इन्हें शिरा कहते हैं। धमनी रक्त को हृदय से शरीर के विभिन्न अंगों में ले जाती हैं और शिरा उसे वापिस हृदय में लाती हैं।

हमारे शरीर के प्रत्येक अंग में पीड़ा भी होती है। शरीर के प्रत्येक अंग में

चित्र १९.
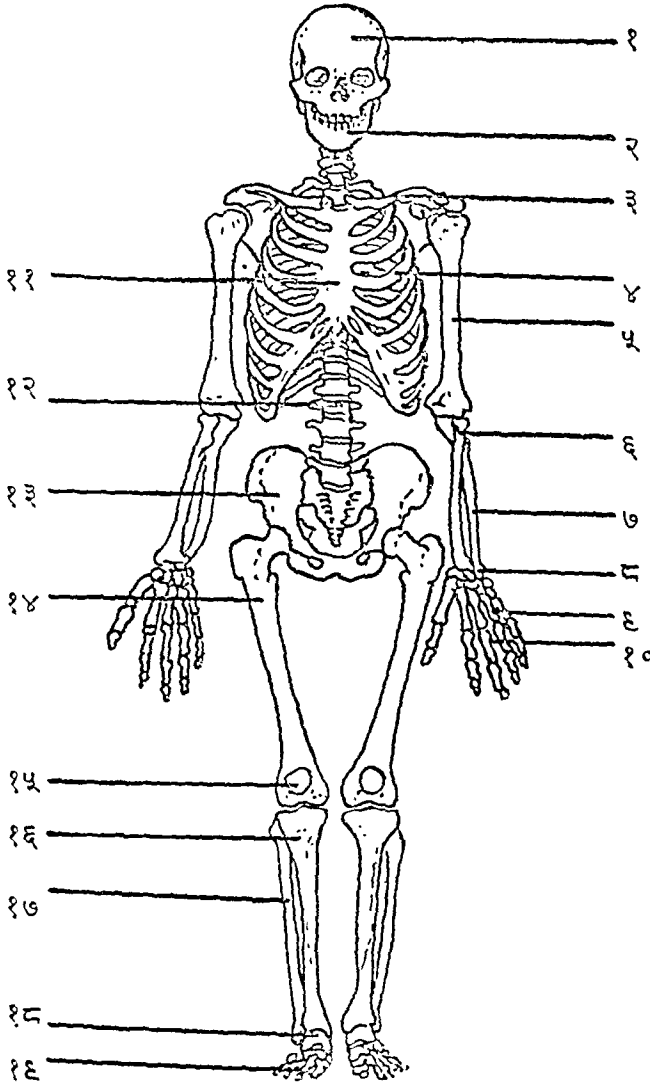
१. कपाल, २. नीचे का जबड़ा, ३. हँसली, ४. पसली, ५. बाहु अस्थि, ६. बहिर्भुजा अस्थि, ७. अन्तःभुजा अस्थि, ८. मणिबंध अस्थियाँ, ९. हथेली की अस्थियाँ, १०. उँगलियों की अस्थियाँ, ११ उरोस्थि, १२ रीढ़, १३. कूल्हे की हड्डी, १४. उर्वस्थि, १५. घुटने की हड्डी, १६. जंघास्थि, १७. अनुजंघास्थि, १८. प्रपाद अस्थियाँ, १९. अँगुलियों की हड्डियाँ।

चमकदार तन्तु फैले हुए हैं । ये ही हमें पीड़ा का अनुभव कराते हैं । इन तन्तुओं को ज्ञान-तन्तु कहते हैं । यदि हमारे किसी अंग में चोट लगती है तो उस अंग में व्याप्त ज्ञान-तन्तु मस्तिष्क में चोट लगने का समाचार पहुँचाते हैं । जब समाचार मस्तिष्क में ज्ञान-तन्तुओं के केन्द्र में पहुँच जाता है तो हमें चोट के स्थान पर पीड़ा अनुभव होती है। इस प्रकार हमारे शरीर के निर्माण में जिन वस्तुओं ने भाग लिया है उनमें अस्थि, पेशी, धमनी, शिरा, ज्ञान-तन्तु और रक्त प्रमुख हैं ।

१०५. कंकाल—शरीर का निर्माण अस्थियों के ढाँचे पर हुआ है । समझने की सरलता के लिए हम मानव-अस्थिपंजर को पाँच भागों में बाँट सकते हैं । खोपरी, धड़, हाथ, नितम्ब और पैर ।

१०६. खोपरी—खोपरी के दो भाग हैं । कपाल या मस्तिष्क कोष्ठ और चेहरे की अस्थियाँ । मस्तिष्क कोष्ठ हमारे शरीर में सबसे अधिक दृढ़ पेटी है । इसमें हमारा मस्तिष्क सुरक्षित रहता है । यह आठ अस्थियों के मिलने से बना है । इनके जोड़ दाँतेदार या सेवनी कहलाते हैं । कुछ पुराने लोग इन दाँतेदार जोड़ों को विधाता का लेख कहते हैं । एक अस्थि ललाट बनाती है, दो कपाल की छत बनाती हैं और दो कनपटियाँ । एक अस्थि कपाल का पिछला और नीचे का कुछ भाग बनाती है, इसके निचले भाग में एक छेद होता है, जिसमें होकर मस्तिष्क रीढ़ या मेरुदण्ड से जुड़ा होता है । एक तितली के आकार की अस्थि खोपरी के तले और बगल का कुछ भाग बनाती है । एक छोटी छेददार अस्थि होती है जो नाक की छत और उसकी बगल का कुछ भाग बनाती है । इन छेदों में होकर ज्ञान-तन्तुओं की वे छोटी-छोटी शाखाएँ गुजरती हैं जो नाक को सूँघने की शक्ति प्रदान करती हैं ।

चेहरे में चौदह अस्थियाँ होती है । नीचे के जबड़े के अतिरिक्त वे सब अचल होती हैं और कपाल के साथ जुड़ी होती हैं । एक अस्थि निचले जबड़े की, दो उपरले जबड़े की और दो कपोलों की होती हैं । इनके अतिरिक्त जो नौ अस्थियाँ हैं वे आकार में छोटी होती हैं और उन सब का सम्बन्ध नासिका से होता है । ऊपर के जबड़े की दोनों अस्थियाँ जबड़े तथा मुँह की छत का कुछ भाग बनाती हैं । प्रत्येक के निचले किनारे पर आठ दाँतों के लिए दन्त-कूप होते हैं । नीचे के जबड़े की अस्थि ठोड़ी बनाती है इसके उपरले किनारे पर सोलह दन्त कूप होते हैं । इसके पिछले सिरे कनपटी बनाने वाली अस्थियों से जुड़े होते हैं । यह एक चल-सन्धि है, जिसके कारण यह अस्थि केवल ऊपर-नीचे को ही नहीं हिलती वरन् थोड़ा इधर-उधर भी घूम सकती है ।

१०७. धड़—धड़ एक पिंजरा है जो रीढ़ की हड्डी के सहारे बना है । खोपरी इसी रीढ़ की हड्डी पर रखी हुई है । रीढ़ की हड्डी खोपरी से चलकर नीचे नितम्ब की अस्थियों से जुड़ी हुई है । रीढ़ की हड्डी वास्तव में एक अस्थि नहीं है । यह तैंतीस टेढ़ी-मेढ़ी छोटी-

छोटी अस्थियों का बना एक दण्ड है, यह अस्थियाँ कीकस या कशेरुक कहलाती हैं। यह कशेरुकायें एक के ऊपर एक धरी हुई हैं। दो कशेरुकाओं के बीच में उपास्थि की गद्दी लगी होती है। उपास्थि दृढ़ मस को कहते हैं। हमारे कान के बाहिरी भाग का निर्माण उपास्थि से हुआ है। कशेरुकाओं के बीच में उपास्थि की गद्दियाँ होने के कारण कूदने-फाँदने में जो धक्का लगता है वह बँट जाता है, और रीढ़ पर चोट नहीं पहुँचती। ऊपर की सात कशेरुकायें गर्दन या ग्रीवा को साधती हैं। उनसे नीचे की बारह, जो पीठ की कशेरुकायें कहलाती हैं, धड़ के पिंजर को बनाने में सहायता देती हैं। इनसे नीचे की पाँच कमर या कटि की कशेरुकायें कहलाती हैं। इनके नीचे एक पच्चराकार नितम्ब कशेरुका होती है। यह पाँच कशेरुकाओं को आपस में मिल जाने से बनी है। कशेरुक दण्ड या रीढ़ के निचले सिरे पर नन्हीं-नन्हीं चार कशेरुकायें मिलकर एक हो जाती हैं और पुच्छास्थि बनाती हैं। यह पुच्छास्थि मनुष्य में उसके पुरखा की पूँछ का अवशेष है। कशेरुकाओं के बीच में एक छेद होता है। इसमें होकर कपाल में स्थित मस्तिष्क-पदार्थ या मज्जा की एक शाखा नीचे तक उतर आती है। कशेरुक दण्ड की यह नाली सुषुम्ना नलिका कहलाती है और इसके भीतर रहने वाली मज्जा की शाखा सुषुम्ना रज्जु।

वक्ष या छाती का पिंजर ऊपर से सँकरा और नीचे से चौड़ा होता है। इसमें पीछे की ओर बारह पीठ-कशेरुकायें होती हैं, अगल-बगल में बारह-बारह पसलियाँ और आगे की ओर एक अस्थि। यह अस्थि उरोस्थि कहलाती है। एक कशेरुका में दोनों ओर एक-एक पसली जुड़ी होती है। पसलियों के ऊपर के सात जोड़े सीधे जाकर अलग-अलग उरोस्थि से मिलते हैं। यह चौदह पसलियाँ सच्ची पसलियाँ कहलाती हैं। उनसे नीचे के तीन जोड़ों की पसलियाँ पहले आपस में मिलती हैं तब जाकर उरोस्थि से जुड़ती हैं। यह छः पसलियाँ झूटी पसलियाँ कही जाती हैं। नीचे के दो जोड़े अर्थात् चार पसलियाँ उरोस्थि तक नहीं पहुँचतीं, बीच में ही रह जाती हैं और अधूरी पसलियाँ कहलाती हैं।

१०८. हाथ—हाथ धड़ से कंधे के द्वारा जुड़ा होता है। कंधा दो अस्थियों से मिलकर बनता है। आगे की अस्थि पतली और कण्ठ के नीचे होती है, यह हँसली कहलाती है। पीछे की अस्थि चौड़ी और तिकोनी होती है। यह स्कन्धास्थि कहलाती है। हाथ के ऊपर के हिस्से में एक अस्थि होती है जो बाहु अस्थि कहलाती है, इस बाहु-अस्थि का ऊपर का सिरा स्कन्धास्थि के अन्डाकार गड्हे में फँसा हुआ होता है। स्कन्धास्थि वक्ष के साथ मांसपेशियों और बंधन-तन्तुओं द्वारा बँधी रहती हैं। बन्धन-तन्तु दृढ़ सफेद रज्जु होती हैं जो अस्थियों के बीच सन्धि या जोड़ बनाने के काम में आती हैं। हाथ के निचले भाग में दो अस्थियाँ होती हैं जो अस्थि अँगूठे की ओर होती है उसे बहिःभुजा अस्थि, और जो अस्थि अँगूठे से भीतर की ओर सबसे छोटी अँगुली की ओर होती है उसे अन्तःभुजा

अस्थि कहते हैं। कलाई में छोटी-छोटी आठ अस्थियाँ होती हैं। यह मणिबन्ध-अस्थियाँ कहलाती हैं। ये दो पंक्तियों में लगी रहती हैं और बन्धन-तन्तुओं से बँधी रहती हैं। इन्हीं के कारण कलाई लचकीली और गतिमान होती है। हथेली में पाँच अस्थियाँ होती हैं। चारों उँगलियों में तीन-तीन और अँगूठे में केवल दो अस्थियाँ होती हैं।

१०९. वस्ति-गह्वर—ऊपर से कशेरुक दण्ड या रीढ़ तथा नीचे से पैर आकर जिस चिलमची या श्रेणिपात्र में मिलते हैं उसे वस्ति-गह्वर कहते हैं। रीढ़ का वर्णन करते समय हम पच्चराकार नितम्ब कशेरुक की चर्चा कर आये हैं। इसे त्रिकास्थि भी कहते हैं। इस त्रिकास्थि के दोनों ओर बेढंगी आकृति वाली नितम्ब-अस्थियाँ आकर मिलती हैं और वस्ति-गह्वर बनाती हैं। प्रत्येक नितम्बास्थि के तीन भाग होते हैं। यह बाल्यावस्था में स्पष्ट प्रतीत होते हैं, पर वयस्कों में दृढ़ता से जुड़ जाते हैं। ऊपर का चौड़ा भाग जघनास्थि या कूल्हे की हड्डी है। नीचे का मोटा भाग, जिस पर मनुष्य बैठता है कुकुन्दरास्थि कहलाता है। और आगे का चपटा भाग जो अपने ही जैसे दूसरे भाग से मिला रहता है पेड़ू या विटपास्थि कहलाता है। यह तीनों अस्थियाँ अर्थात् कूल्हे की अस्थि, बैठने की अस्थि और पेड़ू की अस्थि एक स्थान पर मिलती हैं। उनके मिलने से एक गहरा प्याला बन जाता है। उस प्याले में जांघ की हड्डी या ऊर्वस्थि का सिर रहता है। नितम्ब अस्थियाँ दोनों टाँगों के ऊपर एक चिलमची के समान रखी रहती हैं। वह उदर में रहने वाले अवयवों को सहारा देती हैं।

११०. टाँग—जो अस्थि पैरों को नितम्बों से जोड़ती है वह ऊर्वस्थि या जाँघ की हड्डी कहलाती है। इसका ऊपर का सिरा एक गाँठ के समान होता है और कूल्हे की तीनों अस्थियों से मिलकर बने हुए गोल गड्हे में रहता है। यह मनुष्य शरीर की सबसे लम्बी अस्थि है। इसके नीचे का सिरा फैला हुआ होता है और निचली टाँग की उस अस्थि से जुड़ा होता है जिसे जंघास्थि कहते हैं। निचली टाँग में दो अस्थियाँ होती हैं जंघास्थि और अनुजंघास्थि। जंघास्थि बड़ी हड्डी है। वह टाँग को छूकर प्रतीत की जा सकती है। इसके इस उभरे किनारे को नली कहते हैं, इसलिए जंघास्थि नली की हड्डी के नाम से भी जानी जाती है। यह उर्वस्थि के साथ मिलती है तो घुटने का जोड़ बनता है। यह घुटने का जोड़ घुटने की हड्डियाँ या जंघास्थि से ढका होता है। अनुजंघास्थि या पिंडली की छोटी हड्डी खपच्ची के समान होती है और जंघास्थि के बाहिर की ओर लगी रहती है। जंघास्थि और अनुजंघास्थि की आपस की स्थिति लगभग उसी प्रकार की होती है जैसी कि बहिःभुजास्थि और अन्तःभुजास्थि की। पैर में टखना ऐसा ही है जैसे कि हाथ में कलाई। टखने में सात अस्थियाँ होती हैं। इनमें से एक सबसे मोटी होती है और टखने की हड्डी या गुल्फास्थि कहलाती है। यह जंघास्थि से जुड़ी होती है। एक दूसरी अस्थि पीछे की ओर निकली रहती है और पार्ष्णि या एड़ी की अस्थि कहलाती

है। टाँग की पेशियों के बन्धन-तन्तु इसी से जुड़े होते हैं। शेष पाँच अस्थियाँ पाँव की पीठ का एक भाग बनाती हैं। इनके साथ हाथ की हथेली-अस्थियों के समान पाँच-प्रपाद-अस्थियाँ जुड़ी होती हैं, इन प्रपाद-अस्थियों के आगे अँगुलियों की अस्थियाँ होती हैं, जो अँगूठे में दो तथा शेष चार अँगुलियों में तीन-तीन होती हैं।

१११. अवयवों की स्थिति—मनुष्य के शरीर का यह अस्थि-कंकाल मांसपेशियों और बन्धन-तन्तुओं की सहायता से जोड़कर खड़ा किया गया है। इसकी विभिन्न पेटियों में अनेक अवयव सजाकर रखे गये हैं। खोपरी में मस्तिष्क का मुख्य भाग होता है और देखने, सुनने, सूँघने तथा भोजन खाने, चबाने और चखने के यन्त्र होते हैं। कण्ठ में होकर भोजन तथा मांस की नलियाँ वक्ष-पिंजर में उतरती हैं। यहीं ध्वनि उत्पन्न करने वाला यन्त्र होता है। वक्ष-पिंजर में बाईं ओर को हृदय होता है और दोनों ओर फेफड़े। साँस की नली आकर फेफड़ों से जुड़ जाती है। वक्ष-पिंजर जहाँ समाप्त होता है उस स्थान पर फेफड़ों के नीचे एक अत्यन्त चौड़ी मांसपेशी होती है। इसे वक्षोदर मध्यस्थ पेशी कहते हैं। इसके ऊपर वक्ष होता है और नीचे उदर। यह एक गोल छत के समान होती है। इसका उभार वक्ष की ओर होता है और इसकी पोल उदर की ओर होती है। यह पेशी सदा सिकुड़ती-फैलती रहती है। इससे हमारा साँस चलता है। जब यह ऊपर की ओर उठकर फेफड़ों को दबाती है तो साँस बाहिर निकलती है। जब वह नीचे को हटती है तो फेफड़े फैलते हैं और साँस भीतर को आती है।

भोजन की नली साँस की नली से पीछे होती है। वह वक्ष-पिंजर में होती हुई, वक्षोदर मध्यस्थ पेशी को पार करती हुई उदर, पेट या आमाशय में पहुँचती है। शरीर के इस विभाग में पेट होता है, यकृत या लीवर होता है, क्लोम या पैनक्रियाज होते हैं, तिल्ली होती है और छोटी-बड़ी आँतें होती हैं। गुर्दे या वृक्क होते हैं, मूत्रवाहक नलियाँ होती हैं और मूत्राशय होता है।

शरीर की मांसपेशियाँ दो प्रकार की होती हैं। इच्छाचालित और स्वतन्त्र। इच्छाचालित वे पेशियाँ हैं जिन्हें हम इच्छा करके हिला-डुला सकते हैं। चेहरे की पेशियाँ, हाथ-पैरों की पेशियाँ इच्छाचालित या ऐच्छिक हैं। स्वतन्त्र या अनैच्छिक पेशियाँ वह हैं जिनकी क्रियाओं पर हमारी इच्छा का कोई नियन्त्रण नहीं रहता। हृदय, आमाशय, अंतड़ियों आदि की पेशियाँ सदा काम में लगी रहती हैं। हम इच्छा करके न हृदय की धड़कन रोक सकते हैं और न भोजन का पचना रोक सकते हैं। इन अवयवों की पेशियाँ अनैच्छिक या स्वतन्त्र पेशियाँ हैं।

११२. भोजन प्रणाली—हम भोजन मुँह में डालते हैं, उसे जीभ से इधर-उधर फिराकर दाँतों से खूब चबाते हैं। जब हम भोजन को चबाते होते हैं तो मुँह में स्थित जो छः लाला ग्रंथियाँ हैं उनमें से लार निकलती है और भोजन की लुगदी के साथ मिल
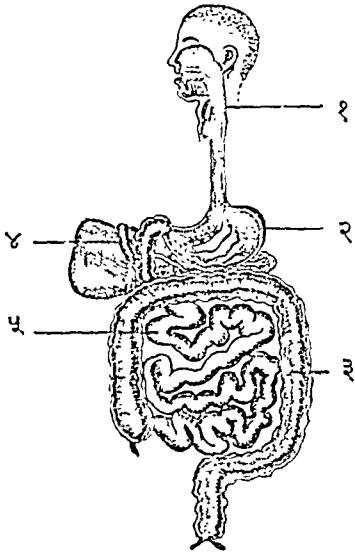
चित्र २०. भोजन-प्रणाली—
१. अन्न-प्रणाली, २. आमाशय,
३. वड़ी अंतड़ो, ४. पक्वाशय,
५. छोटी अंतड़ी.

जाती हैं। भली भाँति चबाये जाने के पश्चात् भोजन की गोली-सी बनकर अन्न-प्रणाली में उतर जाती है। अन्न-प्रणाली की दीवारें मांस-पेशियों की बनी होती हैं। वे सिकुड़ती फैलती हैं और भोजन को दबाकर आमाशय या पेट तक पहुँचाती हैं। आमाशय की भीतरी तल पर असंख्य छोटी-छोटी ग्रंथियाँ होती हैं। जब भोजन आमाशय में पहुँचता है तो इन ग्रंथियों में से आमाशयिक रस निकलने लगता है। आमाशय की दीवारें बार-बार सिकुड़ती और फैलती हैं। इससे आमाशयिक रस भोजन के साथ भली भाँति मिल जाता है। जब भोजन की लपसी-सी बन जाती है तो आमाशय का दूसरा द्वार खुलाता है और यह लपसी छोटी आँत में जाने लगती है। यहाँ पर क्लोम, यकृत और इन छोटी आंतों से निकलने वाले रस भोजन से मिलते हैं। भोजन और भी पतला पड़ जाता है और उसके नन्हे-नन्हे कण इन अवयवों की दीवारों में होकर रक्त में चूस लिये जाते हैं। चूसने की यह क्रिया थोड़ी-थोड़ी पाचन-प्रणाली के सभी भागों में होती है पर छोटी आंत में विशेष रूप से होती है। यह छोटी आंत लगभग २२ फुट लम्बी होती है। इस छोटी आंत को पार करके भोजन वड़ी आंत में पहुँचता है। इसकी लम्बाई छः फीट के लगभग होती है यह उदर के दायें भाग में ऊपर को जाती है, यकृत और आमाशय के नीचे उदर को पार कर वाईं ओर आती है और फिर नीचे को उतरती है। मलाशय या काँच बनाती है और मलद्वार में जाकर खुलती है। वड़ी आँत में भोजन में से पानी सोखा जाता है, उसके ढिम्मे से बँध जाते हैं, जो मलद्वार में होकर शरीर से वाहिर निकल जाते हैं।
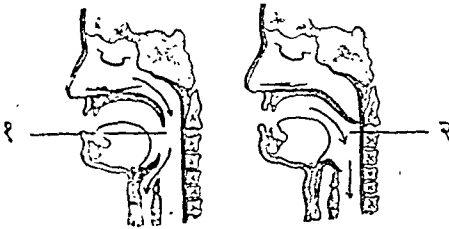
चित्र २१.
१. सांस का मार्ग खुला हुआ, २. साँस का मार्ग बन्द और भोजन निगलने का मार्ग खुला हुआ.

११३. रक्त—जब हम रक्त को सूक्ष्मदर्शक के नीचे देखते हैं, तो हमें उसमें तीन भाग दिखाई देते हैं। एक रंगहीन तरल, लाल कण और कुछ श्वेत कण। रंगहीन तरल को रक्तजल, लाल कणों को लाल रक्ताणु कहते हैं। लाल रक्ताणु का जो लाल रंग है वह लोहे के केन्द्र के ऊपर बना एक लाल रंगीन पदार्थ है। इस पदार्थ को हम रक्त का रंग कह सकते हैं। जब यह रक्त का रंग ऑक्सीजन से मिलता है तो लाल हो जाता है। शरीर के विभिन्न अंगों में जाकर जब यह ऑक्सीजन पेशियों आदि को दे देता है तो इसका रंग नीलम हो जाता है। फेफड़ों में जब इसे फिर ऑक्सीजन मिलती है तो फिर लाल हो जाता है। इस प्रकार यह रक्त का रंग आक्सीजन को शरीर के कोने-कोने में पहुँचा देता है। लाल रक्ताणु बच्चों के शरीर में, उत्पन्न होने से पहले यकृत और प्लीहा या तिल्ली में बनते हैं, जन्म पा जाने के पश्चात् ये अस्थि-मज्जा में बनते हैं। श्वेत रक्ताणुओं की संख्या लाल रक्ताणुओं का पाँचसौवाँ या इससे भी छोटा भाग होती है। अमीबा की भाँति इनका आकार भी निश्चित नहीं होता। इनमें शरीर को हानिकारी बाहिरी पदार्थों तथा रोगोत्पादक जीवाणुओं को हड़प कर लेने की शक्ति होती है। यह अस्थि-मज्जा और लसीका नलिकाओं में बनते हैं।

११४. केशिकायें—जब रक्त की नलिकायें-धमनियाँ पेशियों में पहुँचती हैं तो वे अत्यन्त पतली-पतली नलियों में बँट जाती हैं। यह नलियाँ बाल के बराबर पतली होती हैं इसलिए केशिकायें कहलाती हैं। इनकी दीवार झीनी होती है। इन दीवारों में होकर रक्त में से एक रस निकला है, जिसे लसीका कहते हैं।

११५. लसीका—यह लसीका स्वच्छ तरल पदार्थ है। इसमें सभी पोषक तत्व और ऑक्सीजन होती है। लसीका केशिकाओं से निकलकर पेशियों के कोठों के सम्पर्क में आता है। अवयवों के काम करने में जो निकम्मी और विषैली वस्तुएँ उत्पन्न हो जाती हैं लसीका उनको धोकर बहा ले जाता है। वह उन्हें ऑक्सीजन पहुँचाता है और कार्बन-द्वि-आक्साइड को अलग कर लेता है। रक्त स्वयं कभी पेशी आदि के कोटों को नहीं छूता, वह लसीका द्वारा ही उनसे सम्बन्ध रखता है। लसीका ही वास्तव में शरीर के विभिन्न कोठों को जीवन देने वाला रस है। शरीर के कोठों में घूमकर लसीका का अधिकांश तो रक्त-केशिकाओं के भीतर लौट आता है, जो इनमें नहीं लौट पाता वह अलग नलियों में बहने लगता है। यह नलियाँ लसीका केशिकायें और लसीकावाहिनी कहलाती हैं। इन लसीकावाहिनी नलियों के बीच में कुछ गाँठें होती हैं जो लसीका ग्रंथियाँ कहलाती हैं। यह ग्रंथियाँ छलनी का काम देती हैं। लसीका में जो रोग-जन्तु आदि होते हैं वह उन्हें रोक-कर उनका विनाश कर देती है। यही कारण है कि जब कोई घाव आदि हो जाता है तो लसीका ग्रंथियाँ फूल जाती हैं। वह रोग-जन्तुओं को अपने से आगे नहीं जाने देतीं। यही ग्रंथियाँ श्वेत रक्ताणुओं को उत्पन्न करती हैं। यह ग्रंथियाँ शरीर के भीतर रोग-जन्तुओं को
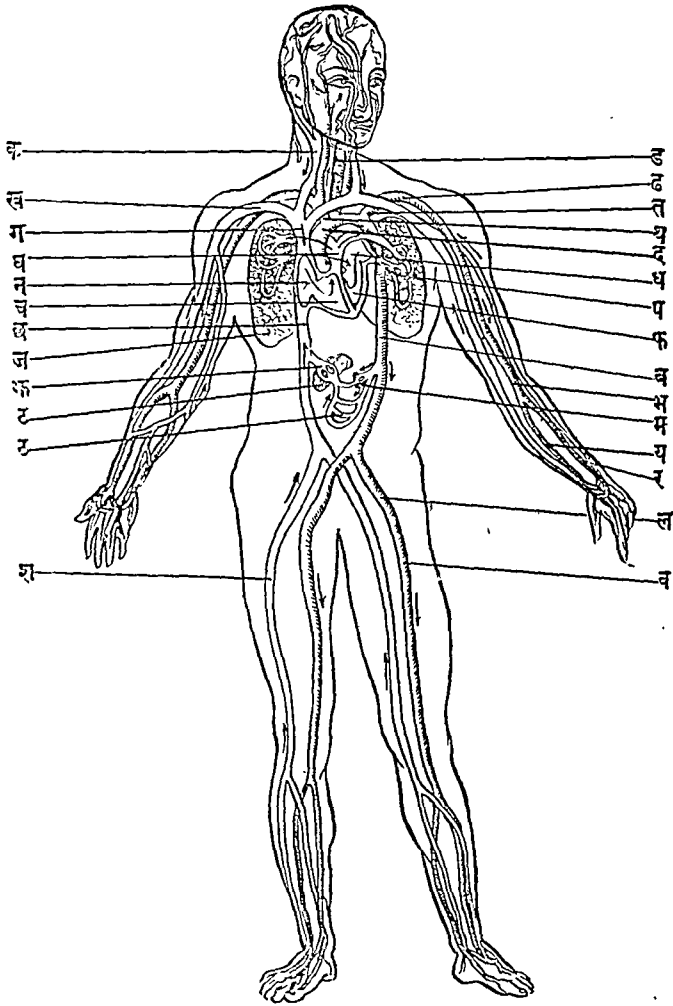
चित्र २२. शरीर की मुख्य धमनी और शिरायें।

क. ऊपर की बड़ी शिरा
ख. दाहिने हाथ की शिरा
ग. ऊपर की महा शिरा
घ. फेफड़े की धमनी
च. दाहिना निचला कमरा
छ. नीचे की महा धमनी
ज. फेफड़ा
झ. यकृत शिरा
ट. प्रतिहारिणी शिरा
ठ. आंत की शिरा
ड. श्वास की नाली
ढ. बायें हाथ की शिरा
त. बाईं बड़ी धमनी
थ. दाहिने हाथ की धमनी
द. महा धमनी
ध. बायाँ ऊपरी कमरा
न दाहिना ऊपरी कमरा
प. बायाँ फेफड़ा
फ. बायां नीचे का कमरा
ब. नीचे की धमनी
भ. हाथ की धमनी
म. उदर की धमनी

रोकने के लिए पुलिस की चौकियाँ हैं और श्वेत रक्ताणु पुलिसमैन। यह लसीकावाहिनी अन्त में शिराओं में मिल जाती है और लसीका फिर रक्त में सम्मिलित हो जाता है।

११६. हृदय—हमने जाना कि रक्त शरीर के अंग-अंग में घूमता है। आक्सीजन लेकर लाल रक्त अंगों में जाता है, कार्बन-द्वि-आक्साइड लेकर नीला रक्त लौटता है। यह चक्र निरन्तर चलता रहता है। रक्त के इस चक्र का केन्द्र हृदय है। हृदय वक्ष-पिंजर में उरोस्थि से थोड़ा बायें ओर को स्थित होता है। इसका आकार मुट्ठी के बराबर होता है। यह नीचे की ओर सँकरा और ऊपर चौड़ा होता है। हृदय में चार कमरे होते हैं, दो नीचे और दो ऊपर। ऊपर के दो कमरों की दीवारें पतली होती हैं और नीचे के दो कमरों की मोटी। हृदय के दाहिनी ओर के दोनों कमरों में अशुद्ध रक्त रहता है और बायीं ओर के दोनों कमरों में शुद्ध। शरीर के विभिन्न अंगों से अशुद्ध रक्त लाने वाली जो शिरायें हैं वे ज्यों-ज्यों हृदय की ओर बढ़ती हैं आपस में मिलती जाती हैं और बड़ी शिरायें बनती जाती हैं। इस प्रकार की दो बड़ी शिरायें एक नीचे से और एक शरीर के ऊपरी भागों से आकर हृदय के दाहिनी ओर के ऊपर के कमरे में मिलती हैं। यह अशुद्ध रक्त दाहिनी ओर के ऊपर के कमरे से दाहिने ओर के नीचे के कमरे में चला जाता है। यह दाहिनी ओर का नीचे का कमरा धड़कता है और इसकी धड़कन से दबकर यह अशुद्ध रक्त फेफड़ों में चला जाता है। फेफड़ों से शुद्ध होकर जब वह रक्त लौटता है तो बायीं ओर के ऊपरी कमरे में आता है। यह ऊपर का कमरा उसे बायीं ओर के नीचे के कमरे में भेज देता है। इस नीचे के बायें कमरे से बड़ी धमनी निकलती है। जब हृदय धड़कता है तो रक्त इस धमनी में होकर हृदय से बाहिर निकल जाता है और धमनियों की शाखा-प्रशाखाओं में होकर शरीर के अंगों और अवयवों में फैल जाता है। अँगूठे के पास जो नाड़ी की धड़कन अनुभव होती है वह हृदय की धड़कन है। एक वयस्क मनुष्य का हृदय एक मिनिट में लगभग बहत्तर बार धड़कता है। जीवन के पहिले वर्ष में हृदय एक मिनिट में एक सौ बीस बार धड़कता है। ज्यों-ज्यों वायु बढ़ती जाती है धड़कन की संख्या कम होती जाती है।
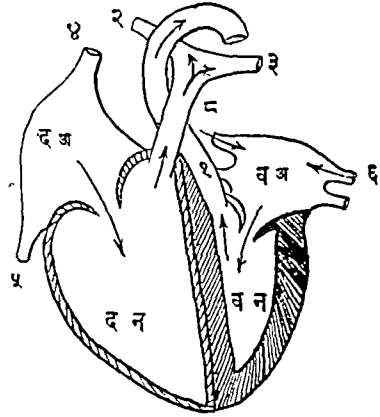
चित्र २३. हृदय

१. बड़ी धमनी, २ और ३ बायें फेफड़े की धमनी, ४ और ५ ऊपर और नीचे की शिरायें, ६ और ८ फेफड़ों की चारों शिरायें। द, न, दाहिना निचला कमरा; व न, बायाँ निचला कमरा; द ज, दाहिना ऊपर का कमरा; व ज, बायाँ ऊपर का कमरा।

११७. फेफड़े—शरीर ठीक प्रकार कार्य कर सके इसके लिए उसके अंगों और अवयवों को शुद्ध रक्त की आवश्यकता है। रक्त की यह शुद्धि फेफड़ों में होती है। फेफड़ों की बनावट स्पंज के समान होती है। इसमें बहुत छोटी-छोटी झीनी दीवारों वाली लाखों हवा की थैलियाँ होती हैं और उनसे गुँथी हुई झीनी दीवारों वाली रक्त की केशिकायें फैली होती हैं। जब वक्षोदर मध्यस्थ-पेशी ऊपर को उठती है तो फेफड़ा ऊपर को दबता है और साँस बाहिर निकलती है। जब यह पेशी नीचे को बैठती है तो फेफड़ा फूलता है और साँस अन्दर जाती है। साँस में भीतर गई हुई हवा फेफड़े की हवा की थैलियों में भर जाती है और उनकी झीनी दीवारों में होकर रक्त के साथ गैसों का आदान-प्रदान करती है। जब वायु साँस में भीतर जाती है तो उसमें २०·९६ प्रतिशत ऑक्सीजन होता है और ·०४ प्रतिशत कार्बन-द्वि-आक्साइड। जब साँस बाहिर निकलता है तो आक्सीजन का परिमाण घटकर १६·५० प्रतिशत हो जाता है और कार्बन-द्वि-आक्साइड बढ़कर ४·५० प्रतिशत हो जाता है। जब हवा भीतर जाती है तो उसमें पानी की वाष्प उतनी ही होती है जितनी कि वातावरण में। पर जब यह फेफड़ों से बाहिर निकलती है तो वह पानी की वाष्प से पूर्णतया भरी हुई होती है।

चित्र २४.
१. साँस की नली, २. वायु के कोठे, ३. रक्त की केशिकायें ४. एक फेफड़ा.

११८. ज्ञान-तन्तु—मनुष्य अपने अंगों को इच्छानुसार चलाता है। उसका शरीर अनेक प्रकार के अनुभवों से प्रभावित होता है। उसे पीड़ा होती है। उसके शरीर में स्थित हृदय आदि अवयव सदा काम करते हैं। डर, क्रोध आदि मनोवेगों का उनके कार्यों पर प्रभाव पड़ता है। जब हम गिरने लगते हैं तो शरीर अपने आप सध जाने का प्रयत्न करता है। जब कोई वस्तु आँख के निकट आती है तो पलकें अपने आप झँप जाती हैं। शरीर में वह क्या है, जो इस प्रकार के अनुभव और इस प्रकार की शारीरिक क्रियाओं को सम्भव बनाता है? वह क्या है जो शरीर के व्यवहार और बर्ताव में इस प्रकार का नियम लागू करता है, इस प्रकार के नियन्त्रण को सम्भव बनाता है? जिनके द्वारा शरीर की इन क्रियाओं का शासन होता है, वे मज्जा से बने हुए ज्ञान-तन्तु हैं। यह नलियाँ नहीं हैं डोरियाँ हैं, तन्तु हैं। इन ज्ञान-तन्तुओं की मोटी डोरियाँ हैं और बाल से भी बारीक केशिकायें हैं जो शरीर के अंग-अंग में व्याप्त हैं। यह ज्ञान-तन्तु ही शरीर का शासन करते हैं। ज्ञान-तन्तुओं का मुख्य केन्द्र खोपरी में रखा हुआ मस्तिष्क और उसका वह भाग है जो रीढ़ की कशेरुकाओं के छेद में होता हुआ कमर से नीचे तक उतर जाता है। ज्ञान-

तन्तु दो प्रकार के पदार्थों से निर्मित होता है। तन्तुओं के ऊपर एक श्वेत चमकता पदार्थ होता है और उसके भीतर एक धूसर रंग की रज्जु या डोरी होती है। जिस प्रकार शरीर के अस्थिपेशी आदि दूसरे भाग छोटे-छोटे कोठों के संगठन से बने हैं, उसी प्रकार ज्ञान-तन्तु और मस्तिष्क तथा रीढ़ में स्थित उनके केन्द्र भी, लघु-लघु कोठों से निर्मित हुए हैं। एक अत्यन्त पतला ज्ञान-तन्तु भी कई सूतों के मिलने से बना होता है।
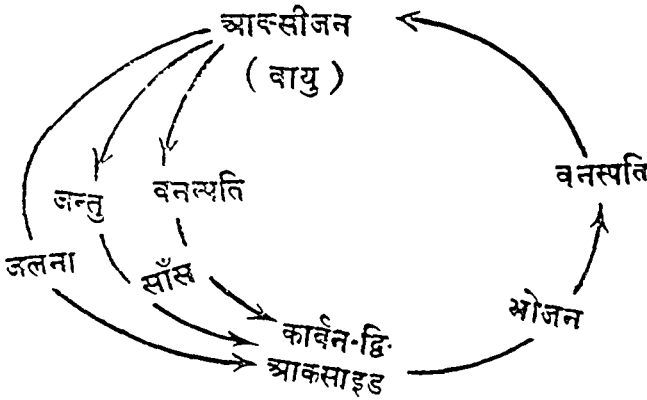
चित्र २५.

११६. ज्ञान-तन्तु के काम—ज्ञान-तन्तु दो काम करते हैं—(१) भिन्न-भिन्न अंगों से केन्द्र में सूचनाएँ पहुँचाते हैं, (२) केन्द्र की प्रतिक्रिया या आज्ञा को उन अंगों तक ले जाते हैं। जो ज्ञान-तन्तु सूचना ले जाते हैं उन्हें हम केन्द्र-मुखी, और जो केन्द्र से आज्ञा लेकर अंगों तक पहुँचाते हैं उन्हें केन्द्र-विमुखी ज्ञान-तन्तु कह सकते हैं। क्योंकि केन्द्र-मुखी ज्ञान-तन्तुओं द्वारा हम में सूँघना, देखना, छूना आदि की संवेदना उत्पन्न होती है, अनुभव प्राप्त होता है, इसलिए यह ज्ञान-तन्तु संवेदना-तन्तु भी कहलाते हैं। जो केन्द्र-विमुखी ज्ञान-तन्तु मांसपेशियों में पहुँचकर उनमें गति उत्पन्न करते हैं वे संचालक तन्तु कहलाते है। जो केन्द्र-विमुखी ज्ञान-तन्तु किसी ग्रन्थि में पहुँचकर उसमें से रस निकालता है, या रस का स्राव करता है उसे स्रावक तन्तु कहते हैं। यदि ज्ञान-तन्तु किसी रक्त-वाहिनी नली की गति का नियन्त्रण करता है तो वह रक्त-संचालक तन्तु कहलाता है। कुछ ज्ञान-तन्तु हैं जो पूरे तौर से केन्द्र-मुखी या केन्द्र-विमुखी हैं। पर अधिकतर ज्ञान-

तन्तुओं में केन्द्र-मुखी और केन्द्र-विमुखी दोनों प्रकार के सूत होते हैं। वे केन्द्र को समाचार पहुँचाते हैं और वहाँ से आज्ञा भी लाते हैं।
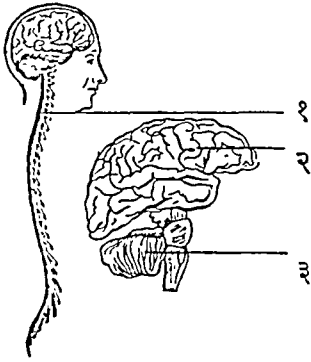
चित्र २६.
१. सुषुम्ना तन्तु, २. बड़ा मस्तिष्क, और ३. छोटा मस्तिष्क.

१२०. मस्तिष्क—ज्ञान-तन्तुओं का प्रमुख केन्द्र खोपरी में स्थित मस्तिष्क है। यह एक गिलगिला-सा पदार्थ होता है जिसमें टेढ़ी-मेढ़ी आड़ी-तिरछी बहुत सी घाइयाँ या दरारें पड़ी होती हैं। मस्तिष्क धूसर और श्वेत मज्जा पदार्थ से बना होता है। धूसर पदार्थ बाहिर की ओर होता है और श्वेत पदार्थ को ढँके रहता है। मस्तिष्क के दो मुख्य भाग होते हैं—बड़ा मस्तिष्क और छोटा मस्तिष्क। बड़ा मस्तिष्क बहुत से और जटिल काम करता है। दुख-सुख, विचार, स्मरण, इच्छा का सम्बन्ध इसी से है। बुद्धि इसी मस्तिष्क में रहती है। बड़े मस्तिष्क के पिछले भाग के नीचे छोटा मस्तिष्क होता है। छोटे मस्तिष्क का काम है पेशियों की गति को नियम में रखना और शरीर के संतुलन को बनाये रखना। दौड़ने, चलने आदि में पेशियों के संचालन को नियन्त्रित करने के लिए आज्ञाएँ यहीं से भेजी जाती हैं। बड़े मस्तिष्क में एक छोटी-सी गाँठ होती है जिसे पीयूष-ग्रन्थि कहते हैं। यह ग्रन्थि अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। शरीर के विकास और उसके बढ़ने को नियन्त्रित रखने में इसका बड़ा भाग है। मस्तिष्क के नीचे के भाग में से बारह जोड़े ज्ञान-तन्तु निकलते हैं। यह तन्तु कान, नाक, आँख इत्यादि अंगों में जाते हैं। इनमें से ज्ञान-तन्तुओं का एक जोड़ा मिश्रित जोड़ा कहलाता है और फेफड़ों, हृदय, यकृत या लीवर तथा आमाशय को जाता है। इस तन्तु का क्षेत्र बहुत फैला हुआ होता है इसलिए इसे वितरित तन्तु कहते हैं। यह फेफड़े और आमाशय का तन्तु भी कहलाता है।

१२१. रीढ़—रीढ़ की कशेरुकाओं के छेद में जो ज्ञान-तन्तु की मोटी डोरी होती है उसे सुषुम्ना तन्तु कहते हैं। सुषुम्ना के द्वारा शरीर से मस्तिष्क को और मस्तिष्क से शरीर को सूचनायें आती हैं। शरीर के दाहिने भाग की सूचनायें मस्तिष्क के बायें हिस्से में और शरीर के बायें भाग की सूचनायें मस्तिष्क के दाहिने हिस्से में पहुँचाई जाती हैं। यदि सुषुम्ना के किसी भाग को चोट पहुँच जाती है या अन्य किसी कारण से उसमें स्थित ज्ञान-तन्तुओं का काम बन्द हो जाता है तो उस स्थान से नीचे के अंगों का सम्बन्ध मस्तिष्क से टूट जाता है। उनके अनुभव करने की शक्ति जाती रहती है। वे सुन्न पड़ जाते हैं और हम कहते हैं कि उन्हें लकवा मार गया है। यदि चोट सुषुम्ना के उस भाग में पहुँचती है जो गरदन

में स्थित है तो वह अत्यन्त भयंकर होती है । यहाँ से जो ज्ञान-तन्तु निकलता है वह वक्षोदर मध्यस्थ पेशी का संचालन करता है । वक्षोदर मध्यस्थ पेशी हमारे साँस का संचालन करती है । इस तन्तु को हानि पहुँचते ही वक्षोदर मध्यस्थ पेशी का काम बन्द हो जाता है । मनुष्य का साँस लेना रुक जाता है और मनुष्य तुरन्त मर जाता है ।

१२२. परावर्त्तित क्रियाएँ—शरीर की वे सारी क्रियाएँ जो हमारे जाने बिना हो जाती हैं परावर्तित क्रियाएँ कहलाती हैं । जब आँख के निकट कोई वस्तु अचानक आ जाती है तो पलक स्वयं झपक जाती है । हम गिरने लगते हैं तो शरीर का सन्तुलन रखने के लिए अंग अपने आप काम करने लगते हैं । सोते हुए भी तलुओं में गुदगुदी करने पर पाँव अपने आप सिकुड़ जाते हैं । नाक में कुछ चले जाने पर अपने आप छींक आ जाती है । निरन्तर अभ्यास करने से तैरना, साइकिल चलाना आदि भी परावर्त्तित क्रियाएँ बन जाती हैं । ऐसी दशाओं में केन्द्र-मुखी संवेदना समाचार को सुषुम्ना-तन्तु मस्तिष्क के निचले भाग में उपस्थित केन्द्रों में पहुँचाते हैं । वहाँ से केन्द्र-विमुखी संचालक तन्तु अंग विशेष को आज्ञा ले जाते हैं । यह क्रियायें प्रधान मस्तिष्क में सूचना पहुँचे बिना ही हो जाती हैं । इनके लिए इच्छा या प्रयत्न नहीं किया जाता ।

१२३. पिंगल योजना—रीढ़ के सामने दोनों ओर ज्ञान-तन्तुओं की डोरियाँ हैं जिनमें बहुत सी छोटी-छोटी गाँठें होती हैं । इन गाँठों में से तन्तु निकलकर सुषुम्ना से निकली डोरियों से जा मिलते हैं । बहुत से तन्तु इनमें से निकलकर भीतरी अवयवों और रक्त-वाहिनी नलियों में भी जाते हैं । अनेक स्थानों पर इन ज्ञान-सूत्रों के अत्यन्त बारीक जाल बन जाते हैं, जो हृदय, फेफड़े, आमाशय, अन्तड़ियों, मूत्राशय और उदर के भीतर घरे दूसरे अवयवों पर फैल जाते हैं और उनकी उन गतियों पर नियन्त्रण रखते हैं जो हमारी इच्छा के आधीन नहीं हैं । ज्ञान-तन्तुओं की इस योजना को पिंगल-योजना कहते हैं ।

अध्याय ७

मनुष्य का शरीर

१२४. वृक्क—जीवन की क्रियाओं में शरीर के विभिन्न प्रकार के पुराने कोठे नष्ट होते रहते हैं और नये कोठे बनते रहते हैं। कोठों के भंग होने को हम भंजन-क्रिया और उनके संगठित होने को गठन-क्रिया कह सकते हैं। यह दोनों क्रियायें सदा चलती रहती हैं। इन क्रियाओं से कुछ ऐसे पदार्थ उत्पन्न होते हैं जिन्हें शरीर अपने से बाहिर निकालना चाहता है। इन अवांछित पदार्थों में पानी, कार्बन तथा आक्सीजन के रसायनिक संयोग से बना कार्बन-द्वि-आक्साइड और नाइट्रोजन, कार्बन, हाइ-ड्रोजन और आक्सीजन के संयोग से निर्मित यूरिया विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। लसीका इन्हें अंगों और अवयवों से बहा लाता है और शिराओं में डाल देता है। पानी की वाष्प और कार्बन-द्वि-आक्साइड का त्यागन फेफड़ों द्वारा होता है; यूरिया को रक्त से बाहिर निकालने के लिए अवयव होता है जिसे हम वृक्क या गुर्दा कहते हैं। वृक्क या गुर्दे दो होते हैं। ये रीढ़ के दोनों ओर सबसे निचली पसलियों के सामने स्थित होते हैं। यह देखने में एक बहुत बड़े लोभिये के दाने के समान होते हैं। इनका रंग किशमिशी होता है। एक धमनी, जो वृक्क धमनी कहलाती है, रक्त को यूरिया से मुक्त करने के लिए गुर्दों में पहुँचाती है। वृक्क यूरिया को रक्त से चूस लेता है और मूत्र बनाता है। यह मूत्र एकमूत्रवाहक नलिका द्वारा वस्तिगह्वर में स्थित मूत्राशय में पहुँचा दिया जाता है। वहाँ से वह शरीर के बाहिर निकल जाता है। यूरिया और उससे सम्बन्धित यूरिक एसिड मूत्र में घुलकर शरीर से बाहिर निकल जाते हैं। वृक्क धमनी वृक्क के भीतर केशिकाओं में विभाजित हो जाती है। उनकी झीनी दीवारों में होकर यूरिया और यूरिक एसिड वृक्क द्वारा चूस लिया जाता है। और यूरिया से मुक्त शुद्ध रक्त वृक्क शिरा के द्वारा वृक्क से बाहिर शरीर में घूमने के लिए चला जाता है।
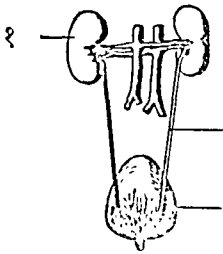
चित्र २७
१. वृक्क, २. मूत्रवाहिका और ३. मूत्राशय.

१२५. यकृत—भोजन-पाचन के विषय में यकृत या लिवर का नाम पहिले लिया जा चुका है। यकृत किशमिशी रंग का अवयव है। यह हमारे शरीर की सबसे बड़ी ग्रन्थि है। वयस्क मनुष्य में इसका भार लगभग डेढ़ सेर होता है। यह वक्षोदर मध्यस्थ पेशी के नीचे उदर भाग की सारी चौड़ाई में फैला हुआ होता है। यकृत शरीर का एक महत्त्वपूर्ण अवयव है। जब भोजन का रस अन्तड़ियों से चूसे जाने के पश्चात् रक्त के साथ शिराओं के मार्ग से यकृत में पहुँचता है, तो यकृत उस रक्त में से बहुत सी शक्कर निकाल लेता

है और अपने पास ग्लाईकोजन के रूप में जमा कर लेता है। वह रक्त में उतनी ही शक्कर जाने देता है जितनी कि रक्त में होनी चाहिए। जब रक्त में शक्कर की कमी हो जाती है तो यकृत ग्लाईकोजन को शक्कर में परवर्तित कर लेता है और रक्त में मिला देता है। यकृत का दूसरा कार्य पित्त उत्पन्न करना है। पित्त भोजन-पाचन की क्रिया में सहायता देता है, कीटाणुओं को मारता है और हल्के तौर से कब्ज को दूर करता है। यकृत से एक नलिका निकलती है। यह पित्त को पित्ताशय में ले जाती है। पित्त उस समय तक पित्ताशय में भरा रहता है जबतक कि उसकी आवश्यकता नहीं होती। आवश्यकता पड़ने पर यह पित्त पित्ताशय से निकलकर आमाशय और अंतड़ी के बीच के भाग में जा गिरता है और भोजन की लपसी के साथ मिल जाता है। यकृत एक कार्य और भी करता है। पेशियों और ग्रन्थियों के काम करते समय उनमें जो नाइट्रोजनधारी पदार्थ भंग होते हैं और लसीका जिन्हें धोकर शिराओं के द्वारा यकृत में पहुँचा देता है, यकृत उनसे यूरिया बना देता है। यह यूरिया रक्त में छुला घूमता रहता है, जब रक्त वृक्क या गुर्दे में पहुँचता है तो वहाँ यूरिया उसमें से चूस लिया जाता है और मूत्र के साथ शरीर से बाहिर निकाल दिया जाता है।

१२६. प्लीहा—प्लीहा या तिल्ली एक लाल रंग का अवयव है जो आमाशय और क्लोम के बाईं ओर को रहता है। प्लीहा क्या-क्या काम करती है, इसका पूरा ज्ञान हमें अभी नहीं हुआ है। पर यह हमें मालूम है कि प्लीहा में रक्त के श्वेत कण बनते हैं और पुराने घिसे हुए रक्त के लाल कण रक्त से अलग कर लिये जाते हैं। यह लाल कण टूट कर धीरे-धीरे नष्ट हो जाते हैं। ऐसा अनुमाना जाता है कि प्लीहा सूक्ष्म कीटों तथा उनसे उत्पन्न हुए विषों से भी शरीर की रक्षा करती है।

शरीर में अनेक ग्रन्थियाँ हैं जिनमें विभिन्न गुणों वाले रस बनते हैं। इन ग्रन्थों में रसवाहिका नलियाँ होती हैं। ये वाहिकाएँ ग्रन्थियों के स्राव या रस को उस स्थान पर ले जाती हैं जहाँ उसकी आवश्यकता होती है। हमारे शरीर में चार महत्त्वपूर्ण ग्रन्थियाँ ऐसी हैं जिनमें वाहिकाएँ नहीं होतीं।

१२७. वाहिकाहीन ग्रन्थियाँ—ये ग्रन्थियाँ वाहिकाहीन ग्रन्थियाँ कहलाती हैं। ये चार प्रकार की होती हैं—क्लोम, चुल्लिका-ग्रन्थि, पीयूष-ग्रन्थि और उपवृक्का।

१२८. क्लोम—क्लोम एक लम्बी और तंग ग्रन्थि है। वह दाहिनी ओर तो आमाशय और अन्तड़ी के बीच जो पक्वाशय है उसके मोड़ में लगी रहती है और बाईं ओर प्लीहा तक फैली रहती है। क्लोम से दो प्रकार का रस निकलता है। एक रस क्लोम से निकलने वाली नलिका के द्वारा पक्वाशय में पहुँचा दिया जाता है। दूसरा रस जो निकलता है वह किसी नलिका या वाहिनी में नहीं जाता, वह तो आन्तरिक स्राव होता है और रक्त में मिलता है। क्लोम का यह स्राव शरीर के विभिन्न भागों को शक्कर वैसे

पदार्थों के जलाने या भंजन करने में सहायता देता है। जब क्लोम के रस की कमी रक्त में पड़ जाती है तो पेशाव में शक्कर आने लगती है और मधुमेह या डार्यबिटीज़ हो जाता है।

१२९. चुल्लिका—चुल्लिका ग्रन्थि को अंग्रेज़ी में थायरायड कहते हैं। यह एक भूरे लाल रंग की ग्रन्थि है जो स्वर-यन्त्र के नीचे, गर्दन के सामने की ओर दोनों तरफ फैली हुई है। इसका आन्तरिक स्राव शरीर के समस्त भागों में रसायनिक क्रिया और शरीर की उन्नति को वढ़ा देता है। इस ग्रन्थि के वढ़ जाने से घीघा रोग हो जाता है।

१३०. पीयूष—पीयूष ग्रन्थि मस्तिष्क की तली के मध्य भाग में लटकी रहती है। इसके दो भाग होते हैं। दोनों के स्राव अलग-अलग वनते हैं। इसके अगले भाग के स्राव का सम्वन्ध शरीर की वृद्धि से है। जव यह स्राव अधिक होता है तो मनुष्य वहुत ऊँचा हो जाता है। जव यह स्राव कम होता है तो वह बौना रह जाता है। पिछले भाग का स्राव अन्तड़ियों की गति को शक्ति देता है। रक्त की नलिकाओं को ठीक करता है और वृक्कों को उत्तेजित करता है। इसके स्राव की कमी से मनुष्य चर्वी से फूल जाता है, उसकी भूख वहुत वढ़ जाती है और काम करने को जी विल्कुल नहीं चाहता।

१३१. उपवृक्का—उपवृक्का दो छोटी-छोटी पीली ग्रन्थियाँ होती हैं जो वृक्कों के ऊपर रहती हैं। इन ग्रन्थियों का रस या स्राव अचानक आपत्ति आ पड़ने पर शरीर की सव शक्तियों का आवाहन करता है और उनको उत्तेजित करता है। जव ये ग्रन्थियाँ अपना वहुत सा रस रक्त में छोड़ती हैं और वह स्राव भिन्न-भिन्न अवयवों में पहुँचता है तो भिन्न-भिन्न प्रभाव डालता है। हृदय जल्दी-जल्दी धड़कने लगता है। रक्त-केशिकाएँ फैल जाती हैं। पसीना आने लगता है, यकृत अपनी इकट्ठी की हुई ग्लाइकोजन जल्दी-जल्दी छोड़ने लगता है। वाल खड़े हो जाते हैं, आँखें उभर आती हैं और पुतलियाँ फैल जाती हैं। यह रस सव अवयवों को जगाने के लिए रसायनिक कोड़े का काम करता है इसलिए कि वे सव मिलकर खतरे का सामना करने के लिए तैयार हो जायें।

डिम्व-ग्रन्थि और शुक्र-ग्रन्थि भी आन्तरिक स्राव वनाती हैं। हृदय के पास एक ग्रन्थि होती है जो थाइमस कहलाती है। उसके स्राव का शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है इसका अभी तक ठीक-ठीक पता नहीं चला है।

१३२. त्वचा—त्वचा शरीर को ढँकती है। उसके नीचे जो मांसपेशियाँ हैं उनकी वह रक्षा करती है। त्वचा के काम हैं अवांछित निकृष्ट पदार्थों को शरीर से निकालना, स्पर्श और ताप का अनुभव प्राप्त करना और शरीर की उष्णता या गर्मी को ठीक वनाये रखना। त्वचा की दो तहें होती हैं। ऊपरी तह को वाह्य चर्म और भीतरी तह को आभ्यन्तर चर्म कहते हैं। वाह्य चर्म की मोटाई भिन्न-भिन्न अंगों में भिन्न-भिन्न होती है। पाँव के तलवों में यह मोटाई १/३० इंच होती है और चेहरे पर १/१०० इंच। नख और वाल वाह्य चर्म के रूप-परिवर्तन से उत्पन्न हुए हैं।

चित्र २८.
१. ऊपरी खाल, २. रंग, ३ और ५. ज्ञान-तंतु, रक्त केशिकायें आदि, ४ चर्वी ६. बड़ी रक्त केशिका, और ७. पसीने की नली.

त्वचा में ज्ञान-तन्तुओं की केशिकाओं के सिरे रहते हैं जो स्पर्श कण कहलाते हैं। इन्हीं के द्वारा गर्मी-सर्दी और छूने का अनुभव होता है। त्वचा की निचली तह में दो प्रकार की ग्रन्थियाँ होती हैं। तैल-ग्रन्थियाँ और स्वेद्-ग्रन्थियाँ। तैल-ग्रन्थियों से तेल के समान चिकनी एक वस्तु निकला करती है। स्वेद्-ग्रन्थियों से पसीना निकलता है। स्वेद् या पसीने में जल, नमक और यूरिया होते हैं।
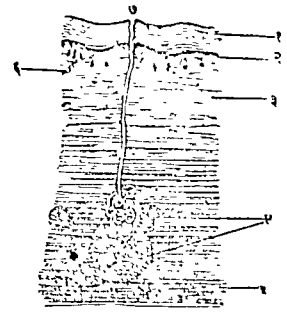
शरीर में जब रसायनिक परिवर्तन होते हैं तो ताप उत्पन्न होता है। इन रसायनिक परिवर्तनों के मुख्य स्थान हैं—मांसपेशियाँ, स्रावक-गन्थियाँ और ज्ञान-तन्तुओं के केन्द्र। हम जितना अधिक काम करते हैं उतने ही अधिक ताप की आवश्यकता होती है और उतनी ही अधिक रसायनिक क्रिया होती है। ताप शरीर में उत्पन्न होता है। वह शरीर से निकलता भी रहता है। इन दोनों क्रियाओं में ऐसा सन्तुलन होता है, कि शरीर के ऊपरी भाग का तापमान लगभग ९८·४° फैरनहाइट पर स्थिर रहता है। शीतल भूभागों में जहाँ वातावरण का तापमान शरीर के तापमान से नीचा होता है। त्वचा ताप को शरीर से बाहिर जाने से रोकती है, और इस क्रिया में वह पीली या स्वेत पड़ जाती है। गर्म जलवायु में वह श्यामल और पसीजी हुई रहती है, जिससे कि उसके द्वारा ताप का बड़ी मात्रा में विसर्जन हो सके।

चित्र २९.
१, २, ३, ४ और ५. स्वर-यंत्र की उपस्थियाँ ६. साँस की नली, और ७. उपजिह्वा.

१३३. स्वर-यन्त्र—स्वर-यन्त्र या स्वर उत्पन्न करने वाला अवयव साँस की नली का ऊपर का भाग है। कण्ठ में जो सामने की ओर गुठली-सी दिखाई देती है, वह वही यन्त्र है। इसका आकार लगभग छोटी डिब्बी-सा होता है। चार उपास्थियाँ मिलकर इसे बनाती हैं। इसमें दो लचकीले तन्तु या सूत्र फैले होते हैं जो स्वर-रज्जु कहलाते हैं। इसी यन्त्र में एक उपजिह्वा नाम की उपास्थि होती है जो साधारणतया खड़ी रहती है और साँस की नली को खुला रखती है। जब हम कोई वस्तु निगलने लगते हैं तो यह उपजिह्वा साँस की नली का द्वार बन्द कर देती है। इसी कारण साँस की नली भोजन की नली के आगे होने पर भी हमारा भोजन कभी साँस की नली में नहीं जाता। सामान्य साँस चलने की क्रिया में स्वर-रज्जु ढीली पड़ी रहती है और कण्ठ का छिद्र चौड़ा रहता है। जब हम बातचीत करते या गाते हैं तो उपास्थियों की पेशियों की

सहायता से स्वर-रज्जु तन जाती है और कण्ठ का छिद्र सिकुड़कर एक दरार-सा बन जाता है। वायु जब उनके बीच में होकर जोर से गुजरती है तो स्वर-रज्जु थरथराने लगता है और स्वर उत्पन्न हो जाता है। किसी व्यक्ति के मुख, नाक और कण्ठ की जैसी बनावट होती है और जैसी बोलते समय उसकी जीभ की अवस्था होती है, वैसा ही उसका स्वर निकलता है।

१३४. ज्ञानेन्द्रियाँ—हम किसी पदार्थ का जो ज्ञान या अनुभव प्राप्त करते हैं उसे संवेदन कहते हैं। जब कोई संवेदना ज्ञान-तन्तु मस्तिष्क को समाचार पहुँचाता है तो इस विशेष संवेदन से विशेष ज्ञान या अनुभव प्राप्त होता है। देखने, सुनने आदि संवेदनों को प्राप्त करने की सामर्थ्य शरीर के एक छोटे भाग को होती है। क्योंकि ये संवेदन एक स्थान विशेष से सम्बधित होते हैं इसलिए स्थानीय संवेदन कहलाते हैं। पाँच संवेदन विशेष प्रसिद्ध हैं—स्पर्श, रस, घ्राण, श्रवण और दर्शन। पीड़ा और तापमान का अनुभव भी विशेष संवेदन हैं। वे विशेष अवयव जो विशेष संवेदनों से सम्बन्धित उत्तेजना को ग्रहण करते हैं ज्ञानेन्द्रिय कहलाते हैं। त्वचा, जीभ, नाक, कान, आँख ज्ञानेन्द्रियाँ हैं।

१३५. स्पर्श—स्पर्श, गर्मी-सर्दी और पीड़ा का अनुभव त्वचा करती है। संवेदन ज्ञान-तन्तुओं के सिरे त्वचा के समस्त तल पर फैले हुए हैं। यह सिरे स्पर्श-कण कहलाते हैं। त्वचा के प्रत्येक भाग में स्पर्श अनुभव करने की शक्ति एक-सी नहीं होती। जिन भागों में स्पर्श-कणों की संख्या अधिक होती है उनकी अनुभव करने की शक्ति भी अधिक होती है। जीभ के अगले भाग, उँगलियों के पोरवे, नाक के सिरे और नीचे के ओठ में स्पर्श अनुभव की शक्ति बहुत अधिक होती है। पीठ की त्वचा में अनुभव करने की शक्ति बहुत कम होती है। जीभ के अग्र भाग में पीठ की अपेक्षा ७२ गुणा अधिक स्पर्श-अनुभव की क्षमता है। स्पर्श की भाँति सर्दी-गर्मी और पीड़ा के अनुभव भी विशेष ज्ञान-तन्तुओं के सिरों के प्रभावित होने से प्राप्त होते हैं। यह अनुभव-कण बाह्य चर्म के नीचे फैले हुए हैं और स्पर्श-कणों से भिन्न हैं। ताप को बहुत अनुभव करने वाले भाग हैं—जीभ का अगला हिस्सा, आँख के पपोटे, कपोल, होंट और हाथ।

१३६. स्वाद—रस या स्वाद का अनुभव करने वाला जो अवयव है, वह मांसपेशियों का बना हुआ है, मुँह में रहता है और जीभ कहलाता है। जीभ नीचे से चिकनी होती है, पर उसके ऊपर की तल पर नन्हें-नन्हें दाने होते हैं। यह दाने जिह्वांकुर कहलाते हैं। यह जिह्वांकुर छोटे-छोटे कोठों के समूह होते हैं। यह कोठे रसज्ञ कोठे कहलाते हैं। इनके भीतर रसज्ञ ज्ञान-तन्तुओं के सिरे रहते हैं। रसवान वस्तुएँ जब घुलकर रसज्ञ कोठों को छूती हैं तो उनमें एक प्रकार की उत्तेजना उत्पन्न होती है। यह उत्तेजना मस्तिष्क में पहुँचकर हमें स्वाद का बोध कराती है। मुख्य स्वाद तीन हैं—कडुवा या तिक्त, मधुर या मीठा, नमकीन और खट्टा। ये चारों रस अलग-अलग ज्ञान-तन्तुओं के सिरों द्वारा जाने जाते हैं। जीभ का अगला भाग मधुर रस से और पिछला भाग तिक्त रस से अधिक

प्रभावित होता है । भाँति-भाँति के भोजनों के जो अनेक स्वाद हैं वे इन्हीं चार रसों के मिलने-जुलने से हमें अनुभव होते हैं । पदार्थों की गन्ध भी उनके स्वाद के साथ घनिष्ट सम्बन्ध रखती है ।

१३७. गन्ध—गन्ध का अनुभव हमें नाक के द्वारा होता है । इसके दो भाग होते हैं जो नासा-गुहा कहलाते हैं । नासा-गुहा का ऊपरी भाग गन्ध-प्रदेश कहलाता है। गन्ध-प्रदेश में गन्ध द्वारा उत्तेजित होने वाले ज्ञान-तन्तुओं के सिरे रहते हैं । जब गन्धधारी कण इन सिरों के सम्पर्क में आते हैं और इसका समाचार मस्तिष्क को भेजते हैं तो हमें गन्ध का अनुभव होता है । जब हमें तेज जुकाम होता है, तो हमारी गन्ध अनुभव करने की क्षमता कम हो जाती है । इसका कारण यह है कि जुकाम में ज्ञान-तन्तुओं के सिरों के आस-पास की पेशियों में सूजन आ जाती है और गन्धधारी कण ज्ञान-तन्तुओं के सिरों के सम्पर्क में सरलता से नहीं आ पाते ।

१३८. स्वर—जब हम बोलते हैं तो वायु को धक्का पहुँचाते हैं । यह धक्के वातावरण में तरंग रूप होकर चारों ओर फैल जाते हैं । स्वर की तरंगों का माध्यम वायु है । ये तरंगें वायु में लगभग १,१०० फुट प्रति सैकिण्ड की गति से चलती हैं । हमारा कान का बाहिर दीखने वाला भाग एक उपास्थि का बना है । यह वायु में चलती स्वर की तरंगों को इकट्ठा करता है और एक नली द्वारा भीतर भेजता है । भीतर जाकर यह तरंगें कान की झिल्ली या कान के पर्दे से टकराती हैं । पर्दा काँपता है और अपने इस कम्पन को अत्यन्त पतली अस्थियों से बने यन्त्र की सहायता से भीतर भेज देता है । यह कम्पन एक ऐसे स्थान पर पहुँचता है जहाँ एक प्रकार का तरल भरा होता है । यह तरल इस कम्पन से तरंगित हो जाता है । श्रवण ज्ञान-तन्तुओं के सिरे इन तरंगों से उत्तेजित हो जाते हैं और इस उत्तेजना को मस्तिष्क में पहुँचा देते हैं । इस प्रकार हमें भाँति-भाँति के स्वर सुनाई देते हैं । भीतरी कान में तीन अर्द्ध चक्राकार नलियाँ होती हैं । इनमें से निकले ज्ञान-तन्तु मस्तिष्क के श्रवण-केन्द्र में नहीं जाते, छोटे मस्तिष्क में जाते हैं । यह तीन अर्द्ध चक्राकार नलियाँ हमारे शरीर का सन्तुलन बनाये रखने में सहायता करती हैं ।
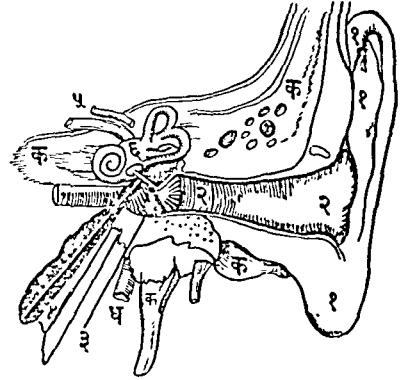
चित्र ३०.

१. बाहिरी कान, २. सुनने की नली, २. कान का पर्दा, ३. कान के बीच की गुहा, ४. कान और गले के बीच की नली, ५. मौखिकी तथा श्रवण नाड़ी और ६. कर्ण कुटी, (क) शंख हड्डी, (ध) धमनी.

१३६. नेत्र—हमारे शरीर में देखने का जो अवयव या यन्त्र है, वह आँख या नेत्र हैं। नेत्र भौंहों के नीचे दोनों पलकों के बीच में होते हैं। इसका आकार गोल होता है। इसके ऊपर की ओर एक अश्रुग्रन्थि होती है। इसमें से नमकीन तरल निकलता रहता है जो सदा आँख को तर रखता है। जब कष्ट, आनन्द या किसी अन्य कारणवश अश्रु-ग्रन्थि बहुत-सा तरल निकाल देती है तो वह कपोलों पर बह आता है और आँसू कहलाता है। आँख का गोला या नेत्रगोलक छः छोटी-छोटी पेशियों से सधा रहता है और उनके द्वारा ऊपर-नीचे अगल-बगल में घुमाया जा सकता है।

नेत्र-गोलक में तीन तहें होती हैं।

१. बाह्य पटल या श्वेत पटल और कनीनिका।

२. मध्य पटल या श्याम पटल और वर्ण पटल।

३. अन्तःपटल या दृष्टि पटल।

श्वेत पटल नेत्रगोलक का श्वेत भाग है। सामने की ओर यह बीच में कुछ उभर आता है और पारदर्शी हो जाता है। इसका आगे को उभरा हुआ भाग कनीनिका कहलाता है और अपने पीछे के श्याम पटल के कारण श्याम दिखाई देता है। श्वेत पटल में पीछे की ओर एक छिद्र होता है जिसमें होकर दृष्टि का ज्ञान-तन्तु नेत्रगोलक के भीतर आता है।
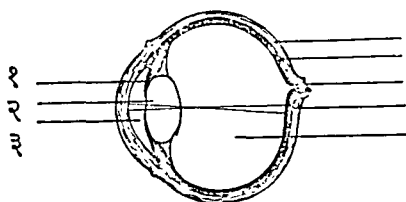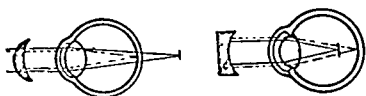
चित्र ३१.

१. साधक पेशियाँ, २. लेंस, ३. लेंस के सामने का कोठा ४. कनीनिका, ५. दृष्टि पटल और वर्ण पटल, ६. ज्ञान-तन्तु मस्तिष्क को जाता हुआ, ७. पीत बिन्दु, और ८. लेंस के पीछे का कोठा.

श्याम पटल एक श्यामल भूरी झिल्ली होती है। यह बाह्य पटल के भीतर रहती है। इस पटल का काम नेत्रगोलक को काला बनाना और प्रकाश को उचटने या परावर्तित होने से रोकना है। बाह्य पटल के समान पीछे की ओर इस पटल में भी एक छिद्र होता है जिसमें होकर दृष्टि ज्ञान-तन्तु नेत्रगोलक के भीतर पहुँचता है। आगे की ओर श्याम पटल की झिल्ली वर्ण पटल बन जाती है। यह वर्ण पटल वह गोल श्यामल पर्दा होता है जो पारदर्शी कनीनिका में से दिखाई देता है। इस वर्ण पटल के बीच में एक गोल छेद होता है जो आँख की पुतली कहलाता है। आँख की पुतली के पीछे एक काँच या लेंस होता है। यह काँच ऐसा काँच नहीं होता जैसा कि कारखानों में बनता है। यह काँच शरीर द्वारा निर्मित एक अंग है, क्योंकि इसके गुण

अजीवित काँच के समान होते हैं। इसलिए इस अंग को काँच या लैंस कहते हैं। नेत्र-गोलक का यह काँच या लैंस ऊपर-नीचे की पेशियों की सहायता से पुतली के पीछे स्थिर रहता है। जब ये साधक पेशियाँ सिकुड़ती या फैलती हैं तो इस काँच की गोलाई बढ़ती या कम होती है। पुतली का छिद्र भी आवश्यकता के अनुसार छोटा-बड़ा होता रहता है।

अन्त पटल या दृष्टि पटल श्याम पटल के भीतर रहता है। यह दृष्टि-ज्ञान-तन्तुओं के सूत्रों के फैलने से बनता है। विभिन्न वस्तुओं से परावर्त्तित होकर प्रकाश की किरणें हमारे नेत्रों पर पड़ती हैं। वे आँख की पुतली और आँख के काँच में होकर अन्तःपटल या दृष्टि पटल पर पहुँचती हैं और वहाँ उस वस्तु का प्रतिबिम्ब बनाती हैं जिससे परावर्त्तित होकर वे आई हैं। इस प्रतिबिम्ब का समाचार जब दृष्टि-ज्ञान-तन्तु मस्तिष्क में पहुँचता है तो हमें वह वस्तु दिखाई देती है। दृष्टि पटल पर एक स्थान ऐसा होता है जहाँ प्रतिबिम्ब बनने से हमें वस्तु अत्यन्त साफ दिखाई देती है। इस स्थान को पीत बिन्दु कहते हैं। दृष्टि पटल पर एक स्थान ऐसा होता है जहाँ यदि प्रतिबिम्ब बनता है तो हमें कुछ भी नहीं दिखाई देता। इस स्थान को अन्ध बिन्दु कहते हैं।

हम वस्तुओं को दोनों आँखों से देखते हैं। दोनों नेत्रों में दो प्रतिबिम्ब बनते हैं पर हमें वह वस्तु एक ही दिखाई देती है। एक ही वस्तु दिखाई दे इसके लिए यह आवश्यक है कि दोनों नेत्रों में प्रतिबिम्ब पीत बिन्दु पर बनें।

नेत्र का काम है विभिन्न वस्तुओं के प्रतिबिम्ब को दृष्टि पटल पर बनाना। दूर या निकट की अनेक वस्तुओं से आई हुई किरणें दृष्टि पटल पर ही प्रतिबिम्ब बनाएँ, इसके लिए नेत्र के काँच की गोलाई को घटा-बढ़ाकर प्रत्येक स्थिति के अनुकूल बनाना होता है। यह कार्य नेत्र-काँच को साधने वाली पेशियाँ करती हैं, और उनकी यह शक्ति आँख की अनुकूलन शक्ति कहलाती है। चश्मा लगाने की आवश्यकता अनुकूलन शक्ति की कमी के कारण पड़ती है। कुछ आँखों से निकट की वस्तु तो स्पष्ट दिखाई देती हैं पर दूर की वस्तु देखने में कठिनाई होती है। कुछ आँखें हैं जो दूर की वस्तु स्पष्ट देख लेती हैं पर निकट की वस्तुओं को देखने में कठिनाई अनुभव करती हैं। कारण यही है कि उन आँखों के काँच किरणों में ऐसा उचित झुकाव नहीं उत्पन्न कर सकते कि प्रतिबिम्ब ठीक दृष्टि पटल के पीत बिन्दु पर बने। नेत्र-काँच की इस अक्षमता को हम नेत्रों के सामने साधारण काँच रखकर दूर कर लेते हैं। चश्मे के काँच की सहायता से वस्तु के स्पष्ट प्रतिबिम्ब दृष्टि पटल बन जाते हैं और मनुष्य को वे वस्तुएँ उसी प्रकार दिखाई पड़ती हैं जैसे कि उसकी आँखों में कोई दुर्बलता न आई हो।

१४०. आँख और कैमरा—आँख की तुलना फोटोग्राफर के कैमरे से की जाती है। कैमरे में लैंस होता है। प्रकाश की रश्मियाँ उसमें होकर चित्र ग्रहण करने वाली प्लेट तक पहुँचती हैं। चित्र को प्लेट पर केन्द्रित करने के लिए हम लैंस को आगे-पीछे सरकाते हैं।

नेत्रों में भी लैंस होता है। यह लैंस साधक पेशियों द्वारा साधा हुआ एक स्थान पर स्थिर रहता है। ठीक पीत विन्दु पर वस्तुओं के प्रतिविम्व बनें इसके लिए यह लैंस आगे-पीछे नहीं सरकाया जाता। साधक पेशियाँ उसकी गोलाई को कम या अधिक करती रहती हैं। कैमरे में प्रकाश को जाने देने के लिए एक शटर या द्वार होता है। यह चित्र लेते समय तनिक देर को खोला जाता है। आँखों में यह काम पलकें करती हैं। जब हम जागते रहते हैं तो वे सदा खुली रहती हैं और प्रकाश सदा उनमें पहुँचता रहता है। कितना प्रकाश कैमरे में पहुँचे यह नियमित करने के लिए कैमरे में डाइफ्राम होता है। इसके छिद्र की छोटाई-बड़ाई नियंत्रित की जा सकती है। आँखों में इस कार्य के लिए तिल होता है, इसके आकार का नियन्त्रण छोटी-छोटी पेशियाँ करती हैं। चित्र प्राप्त करने के लिए कैमरे में फिल्म या प्लेट रखी जाती है और उस पर एक ही चित्र लिया जाता है। आँख में इनके स्थान पर ज्ञान-तन्तुओं द्वारा निर्मित चित्रपट होता है। उस पर प्रतिक्षण चित्र बनते रहते हैं, जिनका समाचार मस्तिष्क को पहुँचता रहता है। कैमरे के भीतर प्रकाश-रश्मियाँ इधर से उधर परावर्तित न हों इसके लिए उसका भीतरी भाग काले रंग से रंगा होता है। आँख के चित्र कोठे की दीवार पर भी एक काले रंग की झिल्ली इसी कारण से पाई जाती है।

१४१. नेत्र-विकार—नेत्रों में प्रायः कुछ विकार आ जाते हैं। उनमें से कुछ व्यापक विकार निम्नलिखित हैं।

१४२. दूरदर्शनता—इस विकार में दूरस्थित वस्तुएँ तो स्पष्ट दिखाई देती हैं पर निकट की वस्तुएँ देखने में कठिनाई होती है। इस विकार में या तो नेत्रगोलक काफी गहरा नहीं होता या लैंस की चपटाई अधिक होती है। फल यह होता है कि प्रतिविम्व बनाने वाली किरणें चित्रपट के पीछे केन्द्रित होती हैं। इस दृष्टि-दोष के निवारण के लिए उभरे पेट वाला उन्नतोदर लैंस उपयोग किया जाता है।

१४३. निकट दर्शन—इस विकार में निकट की वस्तुओं को स्पष्ट तौर से देखा जाता है, पर दूर की वस्तुओं के देखने में कठिनाई होती है। इस विकार में या तो नेत्रगोलक बहुत गहरा होता है या लैंस की गोलाई अधिक होती है। फल यह होता है कि प्रतिविम्व बनाने वाली किरणें चित्रपट तक पहुँचने से पहिले ही केन्द्रित हो जाती हैं। इस दृष्टि-दोष का निवारण पिचके पेट वाले या नतोदर लैंस का उपयोग करके किया जाता है।

एक विकार है जिसमें वस्तुओं की आड़ी खड़ी और तिरछी रेखाएँ एक समान स्पष्ट नहीं दिखाई देतीं। इसका कारण लैंस या पुतली में समुचित टेढ़ाई का अभाव होता है। इस दोष को ठीक करने के लिए बेलन आकार के लैंस उपयोग किये जाते हैं।

एक अन्य रोग में प्रत्येक आँख दो पृथक्-पृथक् वस्तुओं पर केन्द्रित होती हैं और मस्तिष्क को एक सम्मिलित और अनिश्चित प्रतिविम्व पहुँचता है। इसका कारण यह है कि नेत्रगोलक की कुछ पेशियाँ दूसरों से अधिक शक्तिशाली होती हैं और नेत्र को एक ओर

खींच लेती हैं। इस दोष का निवारण बचपन में एक सरल ऑपरेशन द्वारा किया जा सकता है

१४४. वर्णान्धता—इस विकार में रोगी रंगों को, विशेषकर लाल और हरे रंगों को अलग-अलग नहीं पहिचान सकता। इसका कारण यह है कि चित्र-पटल में इन रंगों का अनुभव करने वाले ज्ञान-तन्तु कम होते हैं। अभी तक वर्णान्धता का कोई निराकरण प्राप्त नहीं किया जा सका है।

१४५. आँखों की रक्षा—नेत्र मनुष्य की ज्ञानेद्रियों में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। उनके अभाव में जीवन अत्यन्त दूभर हो जाता है। प्रकृति ने नेत्रों को हानि से बचाने के लिए बहुत से साधन स्वयं बना दिये हैं। फिर भी यदि हम अपने नेत्रों को जीवन भर ठीक और सक्षम बनाये रखना चाहते हैं तो हमें इस रक्षा-कार्य में प्रकृति से सहयोग करना चाहिए। हमें निम्नलिखित बातों का प्रयोग नहीं करना चाहिए--

हम चलती गाड़ी में न पढ़ें। गाड़ी के हिलने से अक्षर ऊपर-नीचे होते हैं, और लैंससाधक पेशियों को लैंस की गोलाई कम-अधिक करने के लिए जल्दी-जल्दी सिकुड़ना-फैलना पड़ता है। इससे वे दुर्बल पड़ जाती हैं।

अधिक देर तक बहुत छोटे अक्षर नहीं पढ़ने चाहिएँ। थोड़ी-थोड़ी देर बाद आँखों को बन्द करके दूर की वस्तुओं की ओर देखकर उन्हें विश्राम दे देना चाहिए।

बहुत मन्द और बहुत तेज प्रकाश में नहीं पढ़ना चाहिए।

कभी मन्द और कभी तेज हो जाने वाले प्रकाश में नहीं पढ़ना चाहिए। ऐसा करने से तिल के छिद्र को नियन्त्रित करने वाली पेशियों पर जोर पड़ता है।

अधिक सिनेमा नहीं देखना चाहिए और पर्दे के बहुत निकट नहीं बैठना चाहिए।

लेटकर नहीं पढ़ना चाहिए। ऐसा करने से आँखों को अपेक्षाकृत छोटा कोण बनाना पड़ता है और इससे थकन आती है।

बहुत तेज प्रकाश की ओर नहीं देखना चाहिए।

आँखों को अधिक नहीं थकाना चाहिए।

आँखों में पड़ी किसी वस्तु को निकालने के लिए आँखों को उँगलियों से नहीं मलना चाहिए। उँगलियों पर रोग के जीवाणु होते हैं और आँख को छूत की बीमारी लग सकती है।

१४६. संतान—जीवों में एक महत्त्वपूर्ण क्षमता है कि वे अपने में से अपने ही जैसे दूसरे जीव उत्पन्न कर सकते हैं। इस क्षमता को हम संतानोत्पत्ति की क्षमता कहते हैं। हमने देखा कि पौदों के फूलों में मादा और नर दो भाग होते हैं। मादा भाग में डिम्ब रहता है और नर भाग में पराग। फल बनने के लिए यह आवश्यक है कि डिम्ब परागित हो और पराग कण डिम्ब को गर्भित करे। जन्तुओं में भी मादा और नर होते हैं। मादा में डिम्ब होता है और नर में जो पराग होता है उसे यहाँ शुक्राणु कहते हैं। मछली,

मेंढ़क आदि जन्तुओं में डिम्ब अत्यन्त छोटे होते हैं । वे सहस्रों की संख्या में दिये जाते हैं । मादा के शरीर के बाहिर शुक्राणुवों के सम्पर्क में आते और गर्भित होते हैं । उनमें से बच्चे भी बाहिर ही निकलते हैं । छिपकली, कबूतर आदि के डिम्ब बड़े होते हैं । वे मादा के शरीर में ही शुक्राणुवों के सम्पर्क में आते और गर्भित हो जाते हैं । बच्चे इन डिम्बों में से मादा के शरीर से बाहिर उत्पन्न होते हैं । मछलियाँ और साँप अण्डे देने वाले जीव हैं । पर कुछ साँप और कुछ मछलियाँ हैं जिनके शरीर से अण्डे नहीं बल्कि , बच्चे निकलते हैं । होता यह है कि अण्डे जन्तु के शरीर में ही रह जाते हैं । उसी में फूटते हैं और बच्चे बाहिर आते हैं । यह जन्तु अपने बच्चों को दूध नहीं पिलाते । शरीर के भीतर माँ और अण्डे से निकलने वाले बच्चों में कोई सम्बन्ध नहीं होता । माँ का शरीर इनके अण्डों के लिए केवल घोंसले का काम देता है । मनुष्य बच्चों को दूध पिलाने वाला जन्तु है । दूध पिलाने वाले जन्तुओं के डिम्ब बहुत छोटे होते हैं और मादा के शरीर के भीतर ही गर्भित हो जाते हैं । दूध पिलाने वाले जन्तुओं में मादा का शरीर संतान के लिए केवल घोंसले का ही काम नहीं देता । वह बनती और बढ़ती हुई संतान को सब प्रकार का भोजन भी पहुँचाता है । बच्चा जब सब प्रकार से पूर्ण हो चुकता है तब उत्पन्न होता है ।

अध्याय ८

भोजन और पाचन

१४७. अनिवार्यता—मनुष्य छोटा-सा बच्चा होता है और फिर धीरे-धीरे बढ़कर बड़ा होता जाता है। उसके नित्य-प्रति के जीवन में विभिन्न प्रकार के पुराने कोठे घिसते और टूटते रहते हैं तथा नवीन बनते रहते हैं । वह चलता-फिरता और अन्य भाँति-भाँति के काम करता है। इन कार्यों में उसे शक्ति की आवश्यकता होती है । यह शक्ति उसके अपने शरीर के भीतर होने वाली रसायनिक क्रियाओं से प्राप्त होती है। मनुष्य का शरीर बढ़े, उसमें नवीन कोठे तैयार होते रहें और वह सब काम भली भाँति करता रहे, इसके लिए उसे भोजन की आवश्यकता है। भोजन न मिले तो मनुष्य का शरीर दुर्बल होने लगता है और वह कुछ दिनों में मर जाता है।

१४८. भोजन के तत्व—मनुष्य दाल-रोटी, साग-भाजी, फल-फूल आदि घी-तेल, मिर्च-मसाले, गुड़-शक्कर आदि खाता है, और पानी पीता है । वह इन वस्तुओं को भाँति-भाँति से तैयार करके और स्वादिष्ट बनाकर खाता है। इनमें जो तत्त्व होते हैं उनको हम आठ विभागों में बाँट सकते हैं—(१) प्रोटीन, (२) वसा या चर्बी, (३) कार्बोहाइड्रेट, (४) विटामिन, (५) खनिज पदार्थ, (६) मसाले, (७) फोक, और (८) पानी।

१४९. प्रोटीन—कार्बन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन और आक्सीजन के रसायनिक संयोग से बने हुए पदार्थ प्रोटीन हैं। ये मांस बनाने के काम में आती हैं। ये भोजन का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण भाग हैं। प्रोटीन हमें पशुओं और शाक-भाजी दोनों प्रकार के भोजन में मिलती है। साधारणतया पशुओं से प्राप्त होने वाली प्रोटीन शाक-भाजी से प्राप्त होने वाली प्रोटीन से अच्छी समझी जाती है। दूध, पनीर, अण्डे, मांस, मछली आदि से प्राप्त प्रोटीन प्रथम वर्ग की कही जाती है और दालें, अन्न, आलू, हरी सब्जियाँ, फल, खुम्मी और यीस्ट से प्राप्य प्रोटीनें दूसरे वर्ग की। दूध, पनीर, अण्डे, मांस, मछली बढ़िया भोजन हैं। यहाँ जानने की बात यह है कि हमारे भोजन में दोनों प्रकार की प्रोटीनों का उपस्थित होना अच्छा होता है। बच्चों, बूढ़ों, माताओं और रोगमुक्त रोगियों को बढ़िया प्रोटीन वाले भोजनों की बहुत आवश्यकता होती है । शरीर के भीतर जब प्रोटीनों में रसायनिक परिवर्तन होता है तो शक्ति मुक्त होती है। वह शक्ति शरीर को प्राप्त होती है।

१५०. वसा या चर्बियाँ—घी और तेल चर्बियाँ हैं। चर्बी थोड़ी-बहुत प्रत्येक भोजन में पाई जाती है, पर मांस और तेलवान बीजों में अधिक होती है। यह कार्बन, हाइ-

और खुश्की आ जाती है। अंग ठण्डे पड़ जाते हैं और अन्त में मनुष्य पागल तक हो जाता है। बी वर्ग के विटामिन अन्तड़ियों की पेशियों को स्वस्थ रखते हैं। अन्तड़ियों की पेशियाँ ठीक काम करती हैं तो भूख अच्छी लगती है और हृदय तथा मस्तिष्क ठीक प्रकार काम करते हैं। यह विटामिन साधारण पकाने में नष्ट नहीं होते। बी वर्ग के विटामिन अन्नों, दालों और फलियों के उपरले छिलकों में, पत्ते वाली हरी सब्जियों में, टमाटर, दूध, अण्डे और यीस्ट आदि में पाये जाते हैं। पालिश किये गये चावल खाने से बेरी-बेरी रोग को बढ़ने का अवसर मिलता है। पालिश की क्रिया में चावल के ऊपर की भूसी पूरी तरह से उतर जाती है और उसके साथ विटामीन बी भी चला जाता है। चावल से अधिकाधिक पोषण प्राप्त करने के लिए हाथ का कुटा चावल और बिना पसाया भात खाना चाहिए।

१५५. विटामिन सी—यह विटामिन सूजन रोकने वाला है। यह रक्त के लाल और श्वेत कणों को पुष्ट करता है। विटामीन डी के साथ मिलकर यह चूने के तत्त्व का शरीर में ठीक उपयोग कराता है। यह घावों को भरने में भी सहायता देता है। विटामिन सी की कमी से शरीर में स्कर्वी नामक रोग हो जाता है। इस रोग में दुर्बलता आती है। मस्तिष्क से काम करने को जी नहीं चाहता। मसूढ़े पोले पड़ जाते हैं और मुँह में जख्म हो जाते हैं। खुली हवा में गरम किये जाने पर विटामिन सी नष्ट हो जाता है। पकाने के बाद ठण्डी हो गई शाक-भाजी को दुबारा गरम करने से भी शाक-भाजी के विटामिन सी की हानि होती है। ताजी हरी पत्तों वाली सब्जियों, ताजा फलों के रसों, टमाटर, गोभी, शलजम नीबू, सन्तरे आदि में विटामिन सी मिलता है। दालों के अंकुर, अमरूद और आंवले में यह विशेष अधिक मात्रा में पाया जाता है। आंवले का विटामिन सी गरम करने से शीघ्र नष्ट नहीं होता। विटामीन सी की प्राप्ति के लिए फलों और सब्जियों का कच्चा खाना विशेष उपयोगी है।

१५६. विटामिन डी—इसकी कमी से छोटे बच्चों पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। इस विटामिन के अभाव में बच्चे का शरीर चूने के तत्त्व का भली भाँति उपयोग नहीं कर पाता। फल यह होता है कि बच्चे की हड्डियाँ कोमल पड़ जाती हैं। दाँत निकलने में कठिनाई होती है। टाँगें झुक जाती हैं, घुटने, सिर छाती बेडौल हो जाते हैं। सदा जुकाम बना रहता है और ज्ञान-तन्तुओं के काम में दुर्बलता आने लगती है। विटामिन डी चर्बी में घुलने वाला है। यह दूध, मक्खन, अण्डे की पिलाई, मछलियों के तेल और घी में पाया जाता है। हमारा शरीर सूर्य की किरणों की सहायता से इस विटामिन को स्वयं बना सकता है। छोटे बच्चों के धूप में तेल मिलने से इस विटामिन की कमी दूर करने में बड़ी मदद मिलती है।

१५७. विटामिन ई—ये पुरुषत्व और नारीत्व को फलदायक बनाने में सहायता

जिस पानी में हम भोजन पकाते या उबालते हैं, ये खनिज लवण उसमें चले जाते हैं। उस पानी को फेंक देने से खनिज लवणों की हानि होती है।

१६५. मसाले—ये भोजन को स्वादिष्ट बनाते हैं। उचित मात्रा में खाने से वे शरीर को स्वस्थ रखने में सहायता देते हैं।

१६६. फोक—जो भोजन हम करते हैं वह सबका सब शरीर में पच नहीं जाता। क्योंकि शरीर में पचता नहीं, इसलिए वह शरीर का भोजन नहीं है। वह फोक है। फोक हमारे भोजन का अत्यन्त आवश्यक अंग है। यह भोजन को इतना फुलाये रखता है कि वह सरलता से पेट, अन्तड़ियों आदि में होकर गुजर सके। फोक हमें पत्तियों, डंठलों, जड़ों और फलों के छिलकों आदि से प्राप्त होता है।

१६७. पानी—यह न हमारे शरीर को शक्ति देता है और न अस्थि-मांस आदि बनाता है फिर भी यह हमारे भोजन का अनिवार्य अंग है। यह हमारे शरीर में विभिन्न वस्तुओं को घुलाने का काम करता है। यह पोषक तत्त्वों को मिलाने तथा उनको शरीर में इधर-उधर पहुँचाने में सहायता देता है। वह पसीना बनकर बाहिर निकलता है और अपने साथ शरीर के अवांछित पदार्थ ले आता है। यही कार्य वह मूत्र बनकर करता है। हमारे शरीर का बहुत बड़ा भाग पानी है। हमारे भोजन में भी पानी का अंश बहुत अधिक होता है। साधारण मांस में लगभग ६० प्रतिशत जल होता है, ककड़ी और टमाटर में तो उसकी मात्रा लगभग ६५ प्रतिशत होती है।

१६८. भोजन से शक्ति—भोजन शरीर को शक्ति प्रदान करता है। भोजन में शरीर के भीतर जो रासायनिक परिवर्तन होते हैं उन्हीं में यह शक्ति मुक्त होती है। इस शक्ति को ताप या गरमी की इकाइयों में नापा जाता है। एक ग्राम (लगभग एक माशा) पानी का तापक्रम एक डिग्री सेन्टीग्रेड ऊपर उठाने में जितनी गरमी की आवश्यकता होती है उसे एक कलौरी कहते हैं। ताप की यह इकाई बहुत छोटी है। इसलिए साधारणतया महाकलौरी का प्रयोग किया जाता है। एक महाकलौरी १,००० साधारण कलौरियों के बराबर होती है। कोई भोजन कितना ताप दे सकता है यह जानने के लिए भोजन को ठीक-ठीक तोलते हैं। उसे 'बम्ब कलौरी मीटर' नामक एक यन्त्र में रखते हैं। इस कलौरी मीटर के भीतर आक्सीजन भरी होती है और इसके चारों ओर पानी होता है। भोजन आक्सीजन में जलाया जाता है। इस जलाने में जो ताप निकलता है उसे पानी सोख लेता है। पानी गरम हो जाता है। पानी का तापमान नाप लेते हैं। और एक सीधे गणित से हिसाब लगा लेते हैं कि किसी भोजन के एक पौण्ड को जलाने से कितने महा-कलौरी ताप मिलेगा। यह पाया गया है कि एक पौण्ड मँड, चीनी या प्रोटीन को जलाने से लगभग १,६०० महाकलौरी ताप मिलता है और एक पौण्ड चर्बी को जलाने से लगभग ४,२०० महाकलौरी।

अवश्य पीना चाहिए।

१७१. भोजन का पकाना—हमारे भोजन में बहुत से फल और शाक हैं जो बिना पकाये खाये जाते हैं। पर अधिकतर भोजन हैं जो उबाले, सेंके या भूने जाते हैं। उचित पकाने से भोजन में अनेक सुधार हो जाते हैं। इससे रोगकारी लघु जन्तु और कृमि-कीट, जो भोजन में उपस्थित होते हैं, मर जाते हैं। इससे भोजन का स्वाद और उसकी गन्ध सुधर जाती है। भोजन का पकाना उसके पचाने में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सहायता देता है। गरम करने से वनस्पति और जन्तु पदार्थों के कोठों की कठोर दीवारें मुलायम पड़ जाती हैं जिससे पाचक रसों को कोठे के भीतर के पोषक तत्त्वों तक पहुँचने में आसानी होती है। पर भोजन को इतना अधिक नहीं पकाना चाहिए कि उसके विटामिन नष्ट हो जायें। वनस्पतियों को पानी में उबालने से उनके खनिज लवण पानी में चले जाते हैं। ऐसे पानी को फेंक नहीं देना चाहिए।

१७२. पाचन—भोजन का पाचन उसे पकाने की क्रिया से आरम्भ हो जाता है। जब खाद्य-पदार्थों को उबाला, सेंका या भूना जाता है तो कोठों के ऊपर की दीवारें कोमल पड़ जाती हैं, कुछ टूट भी जाती हैं। इनके भीतर या बाहिर जो प्रोटीन, मँड आदि के बड़े-बड़े अणु होते हैं, उन पर भी प्रभाव पड़ता है और वे रासायनिक रूप से खण्डित होकर छोटे अणु बन जाते हैं। यह क्रिया पकाने में अपनी पूर्णता को नहीं पहुँचती, आरम्भ ही होती है।

पकाने के पश्चात् हम भोजन को मुँह में रखते हैं। मुँह में दाँत होते हैं। शिशु के दाँत छः मास की आयु से निकलने आरम्भ हो जाते हैं। ये दाँत गिनती में बीस होते हैं और अस्थायी दाँत या दूध के दाँत कहलाते हैं। स्थायी दाँत धीरे-धीरे निकलते हैं। लगभग सात वर्ष की आयु से उनका निकलना अनुभव होने लगता है। वे ज्यों-ज्यों उभरते हैं दूध के दाँतों को धकेलते हैं और उन्हें गिरा देते हैं। ये स्थायी दाँत ३२ होते हैं। चौदह वर्ष की आयु तक पिछली चार दाढ़ों के अतिरिक्त शेष दाँत निकल चुकते हैं। यह चारों दाढ़ें 'अक्ल दाढ़ें' या बुद्धिदन्त कहलाती हैं। ये लगभग २० वर्ष की आयु के पश्चात् निकलती हैं।

हम भोजन मुँह में रखते हैं। जीभ से उसे हिलाते-डुलाते हैं और दाँतों से उसे चबाते हैं। चबाने से कोठों की दीवारें कटती-फटती और टूटती हैं और पोषक तत्त्व उघड़ जाता है। इस प्रकार चबाने का काम पाचन-प्रणाली में केवल दाँत ही कर सकते हैं। इसलिए भोजन को भली भाँति चबाना चाहिए। जो भोजन भली भाँति चबाया नहीं जाता वह शरीर को पूरा लाभ नहीं पहुँचा पाता। भोजन का ठीक-ठीक चबाना इतना आवश्यक है कि प्रकृति ने गाय, भैंस, ऊँट, बकरी आदि में जुगाली की व्यवस्था की है। ये पशु जब चरते हैं तो जल्दी-जल्दी घास या चारे को निगलते जाते हैं। इस प्रकार निगला

आमाशयिक रस निकलने लगता है। आमाशय बार-बार सिकुड़-फैलकर भोजन को मर्दता है और यह आमाशयिक रस भोजन के साथ मिल जाता है। आमाशयिक रस में थोड़ा-सा नमक का तेज़ाब तथा पेप्सीन और रैनिन नाम के दो विकर सम्मिलित होते हैं। आमाशय में पहुँचने के पन्द्रह-बीस मिनिट पश्चात् तक लार भोजन के मँड को शक्कर बनाती रहती है। इतने समय में काफ़ी आमाशयिक रस निकल आता है। यह रस तेज़ाबी या अम्ल होता है। यह लार के क्षार से मिलकर उसकी क्षारता को नष्ट कर देता है। मँड का शक्कर बनना रुक जाता है और भोजन में चारों ओर अम्लता व्याप जाती है। रेनिन नामक विकर दूध को फाड़ता है। उसका छेना अलग कर देता है। अब पेप्सीन उस पर क्रिया आरम्भ करता है, पेप्सीन प्रोटीनों में भी रासायनिक परिवर्तन करता है और उन्हें इस योग्य बना देता है कि वे घुल सकें और सरलता से केशिकाओं के द्वारा सोखे जा सकें। प्रोटीनों से बने इस प्रकार के पदार्थ पेप्टोन कहलाते हैं। आमाशयिक रस कार्बोहाइड्रेट और चर्बियों पर कोई प्रभाव नहीं डालता। भोजन आमाशय में प्रायः तीन-चार घण्टे रहता है।

आमाशय की क्रिया से भोजन लपसी-सा हो जाता है। और वह थोड़ा-थोड़ा करके छोटी आँत में जाने लगता है। अन्तड़ी की पेशियों में सिकुड़ने की लहरें-सी उठती हैं और भोजन को आगे बढ़ाती हैं। छोटी अन्तड़ी का पहिला भाग गोलाई में मुड़ा होता है और पक्वाशय कहलाता है।

१७४. पक्वाशय—पक्वाशय में यकृत और क्लोम से दो नलियाँ आती हैं। ये पित्त और क्लोम का रस लाती है। यह दोनों रस यहाँ आहार के साथ मिलते हैं और पाचन-क्रिया जारी रहती है। लार का गुण क्षारीय होता है और आमाशयिक रस का अम्ल या तेज़ाबी। पित्त का गुण क्षारीय होता है। यह भोजन की लपसी की अम्लता का निराकरण कर फिर उसे क्षारता की परिस्थिति में ले आता है। क्लोम के रस में अमाईलोप्सीन, ट्रिप्सीन और स्टीयपसीन या लाइपेज़ नामक तीन विकर होते हैं। अमाईलोप्सीन कार्बोहाइड्रेट को पचाता है। इसकी क्रिया मुँह के टायलिन के समान मँड को शक्कर में बदलती है। ट्रिप्सीन उन प्रोटीनों को, जो आमाशय से अछूते निकल आते हैं, प्रभावित करता है और उन्हें पेप्टोनों में बदल देता है। लाइपेज़ चर्बियों पर प्रभाव डालता है और उनमें रासायनिक खण्डन करके ग्लिसरीन तथा अम्ल या तेज़ाब उत्पन्न करता है। इस अम्ल को हम वसा-अम्ल कह सकते हैं। यकृत से आया पित्त भोजन के पचाने में सीधा कोई भाग नहीं लेता। पर उसके अभाव में चर्बी में घुलने वाले विटामिन ए, डी और के पूरे तौर से शरीर में नहीं चूसे जाते।

१७५. छोटी अन्तड़ी—भोजन अब सरकता हुआ छोटी अन्तड़ी में जाता है। इस अन्तड़ी से जो रस निकलता है उसमें क्षार होते हैं। ये क्षार ऊपर कहे वसा अम्लों के साथ मिलकर साबुन बना लेते हैं। यह साबुन अखण्डित चर्बी या वसा के कण के साथ

अध्याय ६

रोग और उनसे संघर्ष

१७६. शरीर की मशीन—मनुष्य के शरीर की तुलना अक्सर मशीन से की जाती है। पर मनुष्य का शरीर मशीन की भाँति अजीवित नहीं है। उसमें अपने को परिस्थिति के अनुकूल बना लेने के गुण हैं जो मशीन में नहीं होते। उसमें अपने भीतर नई क्षमतायें या योग्यतायें उत्पन्न कर लेने की शक्ति है जो मशीन में नहीं हो सकती। मनुष्य का शरीर मशीन नहीं वह भाँति-भाँति की क्षमता रखने वाले जीवित कोठों की एक बस्ती है। इसमें जीवित कोठे जीवन में उपजने वाली अनेक परिस्थितियों का सामना काफी सफलता से करते रहते हैं। जब मनुष्य का शरीर साधारण स्वास्थ्य से हट जाता है तो वह रोगी हो जाता है। किसी चोट या आघात के कारण भी वह अस्वस्थ हो सकता है।

१७७. रोग के कारण : भोजन में अभाव—रोग का एक कारण भोजन में उचितपोषक तत्त्वों की कमी है। विटामिन सी की कमी से स्कर्वी हो जाती है और विटामिन बी का अभाव बेरी-बेरी को जन्म देता है।

१७८. मल-संचय—मनुष्य का शरीर अपने जीवित रहने की क्रिया में कार्बन-द्वि-आक्साइड, यूरिया आदि उत्पन्न करता है। शरीर के लिए यह पदार्थ विषैले हैं। यदि ये शरीर से ठीक प्रकार निकलते नहीं रहते तो उसी में एकत्र होते रहते हैं, और रोगों का कारण बनते हैं।

१७९. परजीवी—मनुष्य शरीर के अनेक भयंकर रोग परजीवी, सूक्ष्म जीवों द्वारा उत्पन्न किये जाते हैं। सूक्ष्म जीवों द्वारा उत्पन्न किये गये रोग संक्रामक होते हैं अर्थात् वे छूत से फैलते हैं। इस प्रकार के रोगों के कारण कृमि, कीटाणु, इक-कोठी जन्तु और रोगाणु होते हैं। कृमि छोटे-छोटे सूत से कीड़े होते हैं। वह भोजन-प्रणाली में रहने लगते हैं। बच्चों के चुन्ने इसी प्रकार के होते हैं।

१८०. शाकाणु—कीटाणु जो वास्तव में शाकाणु है, वनस्पति वर्ग का अत्यन्त लघु जीवित कण होता है। इसकी मोटाई एक इंच के दस हजारवें भाग तक हो सकती है। कुछ कीटाणुओं के शरीर पर रोएँ होते हैं और उनको हिलाकर पानी पर बड़ी तेजी से तैर सकते हैं। कीटाणु तीन आकारों के पाये गये हैं। गोल, लंबोतरे और ऐंठनदार। निमोनिया का कीटाणु गोल होता है, तपेदिक और हैजे के लंबोतरे तथा रक्त को विषाक्त करने वाले कुछ कीटाणु ऐंठनदार होते हैं। कीटाणुओं को यदि नमी, उचित तापमान, अँधेरा और भोजन प्राप्त हो जाता है तो वे तेजी से बढ़ते हैं। कीटाणु भोजन चूसकर बढ़ने लगता है।

१८३. त्वचा—शरीर से बाहिर हमारी त्वचा सूक्ष्म जीवों से हमारी रक्षा करती है। हमारा यह दृढ़ लचकदार अंग सूक्ष्म जीवों को रक्त धारा में प्रवेश पाने से रोकता है। त्वचा की चिकनाई और उस पर उगे हुए रोम इस कार्य में उसकी सहायता करते हैं। जब त्वचा कट जाती है तो उस मार्ग से सूक्ष्म जीव शरीर में प्रवेश पा सकते हैं। ऐसा न हो सके, इसलिए यह आवश्यक है कि घाव पर तुरन्त कोई सूक्ष्म जीवनाशक पदार्थ लगा दिया जाये। आयोडीन का टिंक्चर, जो अल्कोहल या स्प्रिट में घुली हुई आयोडीन होती है, इस काम के लिए घर में रखा जा सकता है।

श्वेत रक्ताणुओं की चर्चा पहिले की जा चुकी है। यदि सूक्ष्म-जीव रक्त धारा में पहुँच जाते हैं तो ये श्वेत रक्ताणु उनसे युद्ध करते हैं। वे उन्हें खा जाते हैं। यदि शरीर के किसी भाग में बहुत से सूक्ष्म जीव इकट्ठे हो जाते हैं तो ये श्वेत रक्ताणु भी बहुत बड़ी संख्या में वहाँ पहुँच जाते हैं। सूक्ष्म जीवों को घेर लेते हैं। वे लगभग सदा ही उन पर विजय पाने में सफल होते हैं। यदि वे उन सूक्ष्म जीवों को खा जाने में असमर्थ होते हैं तो उन्हें फोड़ा-फुन्सी बनाकर बाहिर निकाल देते हैं।

१८४. विष-विरोधक—विष-विरोधकों का निर्माण शरीर की रक्षा का तीसरा उपाय है। प्रत्येक स्वस्थ मनुष्य के रक्त में कुछ ऐसे रासायनिक पदार्थ होते हैं जो रोगकारी सूक्ष्म जीवों के बुरे प्रभावों का निराकरण करते हैं। इन पदार्थों को विष-विरोधक कहते हैं, क्योंकि रोगों के विष अलग-अलग होते हैं इसलिए उनके विष-विरोधक भी विभिन्न होते हैं। मनुष्य के शरीर में जिस रोग का विष-विरोधक उपस्थित होता है वह रोग उसे नहीं होता। ऐसा विष-विरोधक रखने वाले मनुष्य उस रोग से सुरक्षित कहे जाते हैं। बहुत से मनुष्यों में कुछ रोगों के विरुद्ध ऐसी सुरक्षितता प्राकृतिक होती है। पर वैज्ञानिक खोज-बीन से यह ज्ञात हो गया है कि आवश्यकता पड़ने पर ऐसी सुरक्षितता सभी मनुष्यों में उत्पन्न की जा सकती है। इस कार्य के लिए रोग विशेष का हल्का-सा विष मनुष्य के शरीर में डाला जाता है। मनुष्य का रक्त इस विष से लड़ने के लिए अपने भीतर उसका विष-विरोधक बना लेता है। यह विष-विरोधक आगे आवश्यकता पड़ने पर उस रोग से उस मनुष्य की रक्षा करता है। रोग के हल्के विष या दुर्बल सूक्ष्म जीवों को मनुष्य के शरीर में पहुँचाने की क्रिया को टीके लगाना कहते हैं। आजकल चेचक, हैजा, प्लेग, तपेदिक, मोतीभरा, डिप्थीरिया और कुत्ते के काटे के टीके साधारणतया लगाये जाते हैं।

१८५. चेचक—चेचक का रोग पहले माता या शीतला के कोप के कारण समझा जाता था। इससे बहुत से नर-नारी और बालक मर जाते थे, जो बचते थे वे कुरूप हो जाते थे। कुछ रोगी अन्धे भी हो जाते थे। १७९८ में जेनर नामक अंग्रेज चिकित्सक ने इस रोग से सुरक्षा प्राप्त करने का एक सरल उपाय निकाला। यह वही टीका था जो आज प्रत्येक बालक के लगाया जाता है। एक बछड़े के शरीर में चेचक के सूक्ष्म जीव डाले

वर्ष में प्रकट होता है। साधारणतया ३०-६० दिन के भीतर ही रोग के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। रोगी को अत्यधिक प्यास लगती है। पर पानी देखने या उसका नाम सुनने से भी उसे गले में भीषण पीड़ा होती है। उसे बहुत डर लगता है। वह पागल-सा हो जाता है। दशा बिगड़ती जाती है और वह अंत में मर जाता है। कुत्ते की लार के साथ एक भीषण रोगाणु मनुष्य के शरीर में प्रवेश पा जाता है। फ्रांस के प्रसिद्ध वैज्ञानिक पास्चर ने इस रोग की चिकित्सा निकाली है। कुत्ते के काटने के पश्चात् चौदह दिन तक रोगी को इस जाति के दुर्बल रोगाणुओं के इन्जेक्शन दिये जाते हैं। और इन इन्जेक्शनों में रोगाणुओं की मात्रा प्रतिदिन बढ़ाते रहते हैं। इससे शरीर की रक्षक शक्तियों को उत्तेजना मिलती है। उसके विष-विरोधक तत्त्व सबल हो जाते हैं। जब असली रोगाणुओं का प्रभाव ज्ञान-तन्तुओं के केन्द्रों तक पहुँचता है तो वह इन केन्द्रों को सतर्क और सबल पाता है। और इन्हें हानि पहुँचाने में असफल रहता है।

१८९. रोगवाहक—ऊपर कहे रोग पानी, हवा, भोजन, दूध या शारीरिक सम्पर्क से फैलते हैं। ऐसे बहुत से कीट या कीड़े हैं जो रोगों को फैलाने में सहायता देते हैं। यह कीट रोग के सूक्ष्म जीवों को एक रोगी से दूसरे रोगी के पास पहुँचाते हैं। रोग के सूक्ष्म जीव या तो किसी कीट के शरीर के भीतर होकर स्वस्थ मनुष्य तक पहुँचते हैं या किसी कीट के शरीर से चिपककर। मक्खी और मच्छर हमारे सुपरिचित रोगवाहक हैं। पर इनके अतिरिक्त पिस्सू, जूं, खटमल और अन्य कीट भी हानिकारी सूक्ष्म जीवों को इधर-उधर पहुँचाते रहते हैं।

१९०. मक्खी—मक्खी अत्यन्त भयानक रोगवाहक है। वह कूड़े और गन्दगी में पैदा होती है। उसके पैरों के नीचे गद्दियाँ होती हैं और उसका सारा शरीर नन्हें-नन्हें रोमों से ढका होता है। जब वह कूड़े पर चलती-फिरती है तो लाखों सूक्ष्म जीव उसके शरीर से चिपककर रह जाते हैं। मक्खी कूड़े से उड़कर हमारे घर पहुँचती है। वह न नहाती है और न पैर धोती है। सीधी आकर जहाँ जी में आता है बैठ जाती है। वह हमारे भोजन पर भी बैठ जाती है। मोतीझरा, तपेदिक और हैजा इनके द्वारा फैलता है। हैजे के भी टीके तैयार हो गये हैं। जब किसी स्थान पर हैजे के प्रकोप की आशंका होती है तो यह टीका इन्जेक्शन के रूप में लाखों मनुष्यों के लगाया जाता है। इस टीके की सहायता से शरीर में जो विष-विरोधक उत्पन्न होता है वह कई मास तक हैजे के विष से मनुष्य की रक्षा कर सकता है।

मक्खी कूड़े पर अपने अण्डे देती है। कुछ ही दिनों में वे अण्डे बढ़कर फूट जाते हैं। उसमें से एक सूँडा निकलता है। कुछ समय पश्चात् तितली की भाँति यह एक कोश में बन्द होकर कोशित हो जाता है। जब यह कोश खुलता है तो मक्खी बाहिर आती है। थोड़े ही समय में मक्खियों की संख्या में आश्चर्यजनक वृद्धि हो जाती है। रोगों की

मनुष्य के शरीर में। मच्छर और मनुष्य दोनों मिलकर उसके जीवन को सम्भव बनाते हैं।

१९४. **मनुष्य के शरीर में**—जब एक ऐसा मच्छर जिसमें मलेरिया के परजीवी उपस्थित हों, मनुष्य को काटता है तो उसकी लार के साथ बहुत से सूक्ष्म इककोठी जीव मनुष्य के शरीर में प्रवेश पा जाते हैं। एक इककोठी जीव एक लाल रक्ताणु में घुस जाता है और बढ़ने लगता है। बढ़ते-बढ़ते वह पूरे रक्ताणु में भर जाता है। अब उसका विभाजन होने लगता है। वह एक परजीवी अमीबा की भाँति टूट-टूट कर बहुत-से परजीवी बना देता है। यह कार्य दस-पन्द्रह दिन में पूरा हो जाता है। अब लाल रक्ताणु फट जाता है। और यह परजीवी रक्त की नलियों में निकल पड़ते हैं। रक्ताणु टूटने से वे विषैले पदार्थ भी बाहिर आ जाते हैं, जिन्हें ये सूक्ष्म जीव अपने जीवन की क्रिया में रक्ताणु के भीतर बनाते रहे हैं। मनुष्य को जाड़ा लगता है, और ज्वर आता है। यह नये परजीवी दूसरे लाल रक्ताणुओं पर आक्रमण करते हैं, उनमें घुस जाते हैं, अपनी संख्या बढ़ाते हैं और रक्ताणु को तोड़कर फिर रक्तवाहिका में निकल आते हैं। शीघ्र ही उनकी संख्या लाखों में पहुँच जाती है। अब इनमें से कुछ परजीवी नर और मादा कोटे बन जाते हैं और मनुष्य के रक्त में फिरते रहते हैं।

१९५. **मच्छर के शरीर में**—जब मच्छर मनुष्य को काटता है तो वह रक्त चूसता है। इस रक्त के साथ वह मलेरिया के नर और मादा परजीवी भी चूस लेता है। मच्छर के पेट में पहुँचकर मादा कोटा एक डिम्ब बन जाता है और नर कोटा बहुत से शुक्राणु बना देता है। एक शुक्राणु डिम्ब को गर्भित करता है। गर्भित डिम्ब रेंगने वाले कीड़े जैसा हो जाता है। यह कीड़ा पेट की दीवार में होकर मच्छर के पेट से बाहिर निकल आता है। इस कीड़े जैसे गर्भित डिम्ब के भीतर बहुत से छोटे-छोटे कोठे बनने लगते हैं। और इनमें प्रत्येक कोटा बहुत से सूक्ष्म इककोटी जीव बना देता है। एक गर्भित डिम्ब दस हजार के लगभग नवीन सूक्ष्म परजीवी उत्पन्न कर सकता है। यह जीव अब मच्छर की लार बनाने वाली ग्रन्थियों में पहुँच जाते हैं। मच्छर जब मनुष्य को काटता है, तब उसके रक्त में उतर जाते हैं। मलेरिया परजीवी के जीवन चक्र का लैङ्गिक भाग मच्छर के शरीर में बीतता है और अलैङ्गिक भाग मनुष्य के शरीर में।

नया मलेरिया रोगी को बहुत कम होता है। अक्सर पुराना मलेरिया ही अवसर पाकर उभर आता है। इसके सूक्ष्म जीव शरीर के अवयवों में छिपे रह जाते हैं। मलेरिया के विनाश के लिए कुनीन और पैल्युड्रीन नामक औषधियाँ विशेष तौर से काम में लायी जाती हैं।

१९६. **मलेरिया का मच्छर**—सभी मच्छर मनुष्य को मलेरिया नहीं देते। केवल एनोफ़्लीज़ नामक वंश का मादा मच्छर मनुष्य को मलेरिया देता है। मलेरिया हो जाने पर तो उसकी चिकित्सा होनी ही चाहिए, पर मलेरिया को फैलने से रोकने के लिए यह

वहाँ भी उनके साथ मिलाये जाने वाले रक्षक पदार्थों और डिब्बों आदि की परीक्षा खाने वालों के स्वास्थ्य की दृष्टि से की जाती है।

यह सब उपाय करने पर भी यदि कोई छूत का रोग फूट पड़ता है और उसके फैल जाने की सम्भावना होती है, तो स्थानीय अधिकारियों को अधिकार होता है कि वे इस रोग के रोगियों को अलग अस्पताल में उठा ले जायें या उसे उसी के घर में नजरबन्द कर दें और पड़ोसियों को चेता दें कि अमुक घर में अमुक संक्रामक रोग का रोगी है अतः वे उसमें न जायँ। बन्दरगाह के स्वास्थ्य-विभाग के अधिकारियों को यह अधिकार है कि वे किसी संक्रामक रोग के रोगी को जहाज से न उतरने दें या उतरते ही उसे अच्छा होने तक अलग स्थान में नजरबन्द कर दें। यदि किसी जहाज पर छूत के रोग होने का संदेह हो तो बन्दरगाह के अधिकारियों को अधिकार है कि वे ऐसे जहाज को बन्दरगाह पर ही न लगने दें। छूत के रोगों को फैलने से सफलतापूर्वक रोकने के लिए स्थानीय अधिकारियों को ऐसे अधिकार नितान्त न्यायसंगत है।

२००. नाइट्रोजन संग्राहक कीटाणु—कुछ पौदों, विशेषतया जिनमें छीमी जैसे फल लगते हैं, की जड़ों में छोटी-छोटी गाँठें होती हैं। यह गाँठें एक कीटाणु विशेष का निवास-स्थान होती हैं। इन कीटाणुओं में एक विचित्र शक्ति यह होती है कि वह वायु की नाइट्रोजन गैस को पकड़ लेता है और उसे रासायनिक संयोग द्वारा ऐसा रूप दे देता है कि पौदा उसे अपने शरीर के नाइट्रोजनधारी अंग बनाने के काम में ला सकता है।

२०१. सड़ना—जब तक पौधा या जन्तु जीवित रहता है तब तक उसका शरीर सड़ता नहीं, उसके जीने की शक्ति सड़ाने की शक्ति को जीतती रहती है। पर जब जीवन की शक्ति जाती रहती है, तो शरीर का सड़ना आरम्भ हो जाता है। इस सड़ने में कीटाणु अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाग लेते हैं। वनस्पति शरीर सड़ने में दुर्गन्धि नहीं आती, पर जब जन्तु का शरीर सड़ता है तो बहुत अधिक दुर्गन्धि निकलती है। सड़ने की क्रिया में कीटाणु की सहायता से ऑक्सीजन पौधे और जन्तु के शरीरों से मिलती है। इस क्रिया में उनके शरीर के बड़े-बड़े जटिल व्यूह अणु खंडित हो जाते हैं, और पानी, कार्बन-द्वि-आक्साइड, अमोनिया जैसे छोटे व्यूह अणु बन जाते हैं और वायुमण्डल में मिल जाते हैं। अमोनिया जब ऑक्सीजन के साथ रासायनिक क्रिया में प्रवृत्त होता है तो पानी और नाइट्रोजन गैस मुक्त हो जाती है। पौदों के शरीर में नाइट्रोजनधारी पदार्थ कम होते हैं और जन्तुओं के शरीरों में बहुत अधिक। सड़ने की क्रिया में जो नाइट्रोजनधारी लघु व्यूह अणु बनते हैं, वे दुर्गन्धिवान होते हैं।

२०२. नाइट्रोजन चक्र—जब वायुमण्डल में होकर बिजली की चिनगारियाँ दौड़ती हैं तो वायु की नाइट्रोजन ऑक्सीजन से रासायनिक संयोग कर लेती है। यह नाइट्रोजन के ऑक्साइड बरसते पानी में घुलकर धरातल पर आ जाते हैं। वहाँ चूने या दूसरे क्षारों के

की शक्करों का यीस्ट की सहायता से विपाक करके लगभग १५० प्रकार के रासायनिक पदार्थ प्राप्त किये जाते हैं। यीस्ट या खमीर खाने के लिए भी बाजार में बिकता है। इनमें प्रोटीन और विटामिन बी विशेष रूप से पाये जाते हैं।

२०४. फफूंद—कीटाणु और खमीर के अतिरिक्त एक सूक्ष्म वनस्पति होती है जिसे फफूंद या फुई कहते हैं। यह अचारों को खराब कर देती है और पुरानी रोटियों पर लगी पाई जाती है। यह काली या सफेद रंग के धब्बों के रूप में दिखाई पड़ती है। और कभी-कभी उसके बाल से बारीक सूत भी दृष्टिगोचर हो जाते हैं। फफूंद अनेक प्रकार की होती हैं। पिछले कुछ वर्षों के अनुसंधानों से फफूंदों का व्यापारिक और वैज्ञानिक महत्त्व बहुत बढ़ गया है। इनसे कई रोगाणुनाशक महत्त्वपूर्ण औषधियाँ प्राप्त की गई हैं। इन औषधियों में सबसे प्रसिद्ध औषधि पेनीसलीन है।

नहीं होता। ऐसे पानी को साधारणतया खारी पानी कहते हैं। खारी पानी पीने के काम का नहीं होता। अपने देश में पीने योग्य मीठा पानी प्राप्त करने की समस्या बहुत बड़ी समस्या है। इसका हल यही है कि मीठे पानी को, जहाँ वह प्राप्त हो सकता हो, बड़े-बड़े टैंकों में इकट्ठा किया जाये और नल के द्वारा भिन्न-भिन्न स्थानों पर पहुँचाया जाये।

२०८. कोमल और कठोर पानी—मीठे पानी में जब हम साबुन घोलते हैं, तो वह खूब झाग देता है। पर खारी पानी में घोलने पर साबुन झाग नहीं देता। दही के जैसा एक पदार्थ बनकर पानी से अलग हो जाता है। जो पानी साबुन के झागों को नहीं मारता उसे कोमल पानी और जो साबुन के झागों को विनष्ट कर देता है उसे कठोर पानी कहते हैं। इनको हल्का पानी और भारी पानी भी कहा जाता है। कठोर या भारी पानी पीने में कुस्वादु होता है। उसमें कपड़ा धोने में साबुन अधिक खर्च होता है। इंजिनों के बॉयलर में यदि भरा जाता है तो वह इन बॉयलरों को खराब करता है। बहुत से स्थान ऐसे हैं जहाँ केवल कठोर या भारी पानी ही मिलता है। वहाँ पीने, कपड़े धोने और बॉयलर आदि में उपयोग करने के लिए उसकी कठोरता दूर करना अनिवार्य हो जाता है। कुछ पानी जिनको अस्थायी कठोर कहते हैं, उबालने से कोमल हो जाते हैं। स्थायी कठोर पानी पर उबालने का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। पर हजारों-लाखों टन पानी को उबालना अत्यन्त महँगा काम है। इसलिए पानी को समुचित रासायनिक पदार्थों के सम्पर्क में लाया जाता है। पानी में घुले पदार्थों और इन पदार्थों के बीच रासायनिक आदान-प्रदान होता है और पानी की कठोरता दूर हो जाती है। पानी की अस्थायी कहलाने वाली कठोरता घुलने वाले कैलशियम या मैगनेशियम बाइकारबोनेटों के कारण होती है। स्थायी कठोरता का कारण साधारणतया कैलशियम का सल्फेट या कैलशियम का क्लोराइड होता है। जो पदार्थ इसे दूर करने के काम में लाया जाता है, उसे परम्यूटाइट कहते हैं। परम्यूटाइट सोडियम, सिलीकन और अल्यूमीनियम का एक जटिल संयुक्त है। परम्यूटाइट कैलशियम को जल से पृथक् कर देता है।

२०९. पानी की वाष्प और भाप—फर्श पर पड़ा हुआ पानी सूख जाता है। हम कपड़े धोकर डालते हैं तो वे भी सूख जाते हैं। यह सूखा हुआ पानी कहाँ जाता है। इसका क्या होता है? जब धूप होती है तो कपड़े जल्दी सूख जाते हैं। पानी की बूँद जब गरम तवे पर डालते हैं तो वह छुन-छुन करके नाचती है और फिर सूख जाती है। पानी के इस प्रकार सूख जाने का सम्बन्ध गरमी से है। असली बात यह है कि पानी नहीं सूखता। सूखता तो कपड़ा और फर्श है। पानी तो इनको छोड़कर चला जाता है। इस प्रकार छोड़कर चले जाने के लिए उसे गरमी की आवश्यकता होती है। इस गरमी को कपड़े में लगा हुआ पानी धूप से प्राप्त करता है। पानी धूप की गरमी सोखता जाता है, सोखता जाता है। जब वह गर्मी की निश्चित मात्रा सोख लेता है तो उसके रूप में

बनती है। इस भाप का तापमान १०० डि० सैं० से कम नहीं हो सकता। तापमान सौ डिग्री सैं० से नीचे गिरते ही भाप अपने गुप्त ताप को छोड़ देता है और जलकण बन जाता है। चाय बनाने वाला समझता है कि उसने भाप देखी है। पर भाप केतली की टोंटी में से निकलती है। इसलिए उसे टोंटी से मिली हुई दिखाई देना चाहिए। पर ऐसा होता नहीं। टोंटी से कुछ दूर जाकर हमें सफेद बादल से दिखाई देते हैं और हम उसे भाप समझ बैठते हैं। भाप वास्तव में टोंटी के निकट है जो हमें दिखाई नहीं देती। जो हमें दिखाई देता है वह जलकणों का समूह होता है।

जल की गैस हमें दिखाई नहीं देती, चाहे वह जलवाष्प हो या भाप हो। जब जल-वाष्प का तापमान १०० डि० सैं० या इससे ऊँचा होता है तो उसे भाप कहते हैं।

जल की वाष्प वायुमण्डल में सदा उपस्थित रहती है। जब वायुमण्डल का तापमान ऊँचा होता है तो उसमें जलवाष्प की मात्रा अधिक होती है, और उसका तापमान नीचा होता है तो उसमें जलवाष्प की मात्रा कम होती है।

२१२. वर्षा—एक निश्चित तापमान पर वातावरण जलवाष्प की एक निश्चित मात्रा को ही अपने भीतर रख सकता है। जब जलवाष्प की यह मात्रा अधिक हो जाती है, तो वह जलवाष्प पानी बनकर वातावरण से निकल जाती है। गर्मी के मौसम में वातावरण में जलवाष्प काफी उपस्थित रहती है। ऐसी कि हमारा पसीना भी बिना पंखा झले नहीं सूख पाता। जब हम पंखा झलते हैं तो वायुमण्डल में भरी जलवाष्प को अपने शरीर के निकट से हटाते हैं और अपने शरीर से उड़ने वाली जल-वाष्प के लिए जगह बनाते हैं। इस मौसम में बहुत सी जलवाष्प वायुमण्डल में इकट्ठी होती रहती हैं। जब उसकी मात्रा अधिक हो जाती है तो वह पानी बनकर बरस जाती है।

जाड़े के दिनों में जब तापमान नीचा होता है तो वायुमण्डल अधिक जलवाष्प को अपने भीतर नहीं रख सकता। वातावरण में नमी की यह कमी हम अपने शरीर के खुले हुए भागों, मुँह, हाथ और पैरों पर अनुभव करते हैं। हमारे ये अंग नमी के अभाव में फटने लगते हैं।

२१३. कोहरा या धुंध—जाड़े के नीचे तापमान पर वातावरण में अधिक जलवाष्प सँभालने की शक्ति नहीं होती। वह शीघ्र ही जलवाष्प से परिपूर्ण हो जाता है। दिन में जब तापमान कुछ ऊँचा होता है तो जलवाष्प बनकर वायुमण्डल में पहुँचता है। इन जलवाष्प के कण धरातल के आस-पास सब स्थानों पर फैले होते हैं। धरती के आस-पास वायुमण्डल में मिट्टी के भी बहुत छोटे-छोटे कण तैरते रहते हैं। जब रात्रि होती है तो वायुमण्डल का तापमान दिन के तापमान से भी कम हो जाता है। जलवाष्प को सँभाले रखने की वायुमण्डल की शक्ति घट जाती है। जलवाष्प अपना गुप्त ताप त्याग देती है और अत्यन्त सूक्ष्म जल-कण बनकर मिट्टी के तैरते कणों से चिपट जाती है। इन

ऑक्सीजन दोनों गैसों से हल्की होती है इसलिए वह वातावरण में शीघ्र ऊँची उठ जाती है। हवा सदा ठंडे स्थानों से गरम स्थानों की ओर बहती है। वह सागर से थल की ओर बहती है तो जलवाष्प को अपने साथ ले आती है। यही मानसून कहलाता है।

२१६. बादल—जब हम हवाई जहाज में ऊपर उठते हैं तो ठंड बढ़ती जाती है। अर्थात् गरमी घटती जाती है। हम सूर्य की ओर बढ़ते हैं और गर्मी घटती है। यह एक विचित्र-सी बात है। गर्मी को बढ़ना चाहिए, घटना नहीं चाहिए। गर्मी की तरंगें प्रकाश की तरंगों के साथ सूर्य से चलती हैं और पृथ्वी पर पहुँचती हैं। गर्मी अनुभव करने के लिए यह आवश्यक है कि गर्मी की तरंगें पदार्थ द्वारा सोखी जायें, उनका तापमान उठे और ताप की तरंगें उनसे उलटकर इधर-उधर फैलें। हम धरती से ज्यों-ज्यों दूर होते जाते हैं त्यों-त्यों ताप को सोखने वाले पदार्थ कम होते जाते हैं और तापमान भी कम होता जाता है। जल की वाष्प ज्यों-ज्यों ऊँची उठती है उसे शीतलता मिलती है। वह अपना गुप्त ताप तज देती है। और अत्यन्त छोटे-छोटे जल-कणों में परिवर्तित हो जाती है। जल-कणों का यह समूह हमें आकाश में उड़ता हुआ दिखाई देता है। यही बादल है। बादल धरती से बहुत ऊँचाई पर उड़ते हुए धुंध हैं। पहाड़ों पर वे घरों में घुस आते हैं और घर के सामान को गीला कर देते हैं।

२१७. बिजली की कौंध—जब हम बैटरी के दोनों तारों को पकड़कर आपस में मिलाते हैं तो उनके बीच चिनगारी निकलती है। एक तार पर धन विद्युत होती है और दूसरी पर ऋण। धन और ऋण विद्युत् जब परस्पर मिलने के प्रयत्न में बीच की बाधा में होकर दौड़ती है तो चिनगारी दिखाई देती है। बिजली की शक्ति अग्नि और प्रकाश के रूप में प्रकट हो जाती है। सभी वस्तुओं पर धन और ऋण विद्युत् होती है। पर वे परस्पर इस प्रकार एक दूसरे का निराकरण कर लेती है कि वस्तुओं पर उनके होने का पता नहीं चलता। जब कुछ वस्तुएँ विशेष प्रकार से रगड़ पाती हैं तो ऋण या धन विद्युत् उन पर से चली जाती है और केवल एक प्रकार की विद्युत् रह जाती है। उस समय हम कहते हैं
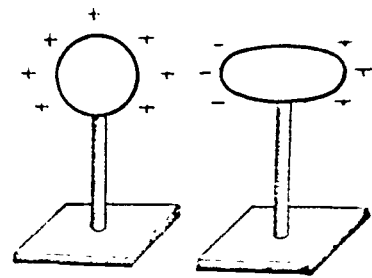
चित्र ३४.
विद्युत् मात्राओं का आकर्षण और विकर्षण.

कि अमुक वस्तु धन विद्युत्वान है और अमुक वस्तु ऋण विद्युत्वान। ऋण विद्युत्वान वस्तु धन विद्युत्वान वस्तु को अपनी ओर आकर्षित करती है। पर एक ऋण विद्युत्वान वस्तु दूसरी ऋण विद्युत्वान वस्तु को अपने से दूर हटाती है। कहा जाता है कि भिन्न प्रकार की विद्युत् मात्रायें एक दूसरे को आकर्षित करती हैं, पर एक प्रकार की विद्युत्

की बड़ी सम्भावना रहती है। इन इमारतों पर बिजली न गिर सके इसके लिए आवश्यक है कि बादल और पृथ्वी की बिजली के बीच मिलने का सुभीता कर दिया जावे। इस कार्य के लिए लोहे या ताम्बे की लम्बी छड़ काम में लाई जाती है। इसका एक सिरा पृथ्वी में गड़ा होता है और दूसरा सिरा इमारत की दीवार के सहारे होता हुआ इमारत की सबसे ऊँची चोटी से भी ऊँचा उठ जाता है। धातु में होकर बिजली तेजी से दौड़ सकती है। जब धन विद्युत् वाला बादल का सिरा इस इमारत के ऊपर आता है तो पृथ्वी में ऋण विद्युत् उभरती है। यह ऋण विद्युत् धातु की छड़ में होकर इमारत की चोटी से ऊँची चली जाती है और वायु में फैल जाती है। वायु में फैली यह ऋण विद्युत बादल की धन विद्युत् के सम्पर्क में आती है और उसका निराकरण कर देती है। बादल और पृथ्वी के बीच चिनगारी की आवश्यकता नहीं रह जाती। इमारत पर बिजली नहीं गिरती।
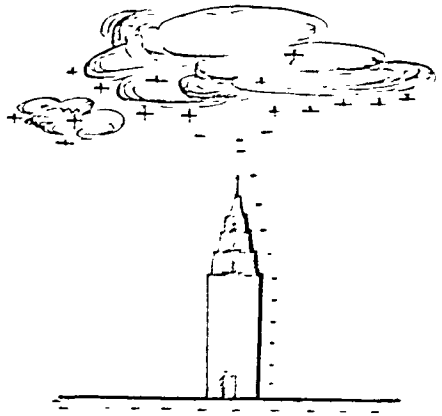
चित्र ३५.
आकाशीय बिजली से रक्षा

२२१. हिम और ओला—हमने देखा कि जलवाष्प जब ऊँची उठती है तो उसे ठंडक मिलती है। वाष्प की छोटी-छोटी बूंदें बन जाती हैं। इन बूंदों का समूह बादल कहलाता है। जब बहुत सी बूंदें इकट्ठी हो जाती हैं तो हवा उनके बोझ को नहीं सँभाल सकती। वे नीचे झुक आते हैं। छोटी बूंदें आपस में मिलकर बड़ी हो जाती हैं और पृथ्वी पर गिरने लगती हैं। हम कहते हैं कि वर्षा हो रही है। ऊँचे पहाड़ों पर ठंड के दिनों में गिरती हुई पानी की बूंदें सर्दी पाकर जम जाती हैं। और पहाड़ों पर बूंदों के स्थान पर हिम गिरती है। तूफानों के साथ जब वर्षा होती है तो वायुमण्डल की विभिन्न परतों के तापमान में बड़ा अन्तर पड़ जाता है। बूंदें नीचे गिरते हुए जब इन ठंडे तहों में होकर गुजरती हैं तो जम जाती हैं। कभी बूंद से दूसरी बूंद मिलती है, वह भी उनके ऊपर जम जाती है। बूंद पर बूंद जमती जाती है और ओला बड़ा होता जाता है। जब ओला हवा की ठंडी परत से निकलकर गरम परत में आ जाता है तो घुलने लगता है। जो मार्ग में घुलने से बचता है वह पृथ्वी तक पहुँचता है।

२२२. बादल-प्रकार—साधारणतया तीन प्रकार के बादल आकाश में देखने में आते हैं। बादल होते हैं जो घोड़े की पूंछ या पक्षियों के परों के समान दिखाई देते हैं। यह पतले होते हैं। यह तीन से दस मील तक की ऊँचाई पर होते हैं। यह हिम के अत्यन्त

हैं। वर्षा का पानी नदियों में बहकर सागर में जाता है। धरती के भीतर सोतों में बहकर सागर में जाता है। कुछ तालाब और झीलों में भर जाता है। कुछ पृथ्वी में सोझा हुआ रह जाता है और घासों, फसलों और वृक्षों के काम में आता है। जन्तुओं के काम में आता है। सागर, झीलों और वनस्पतियों के पत्तों से फिर वाष्प उठती है और बादल बनाती है। बादल फिर बरसता है। जल इस प्रकार सागर, आकाश और थल का निरंतर चक्कर लगाता रहता है।

अत्यन्त ही विरल होगा।

२२७. **बैरोमीटर या वायुभारमापक**—हम एक लगभग पैंतीस इंच लम्बी मजबूत काँच की नली लें, उसे पारे से भरलें और एक चीनी के बड़े कटोरे में थोड़ा-सा पारा डाललें। हम उस नली के मुँह को अपने अँगूठे से बन्द करके नली को औंधा खड़ा कर लें। अब अँगूठे पर धरे नली के मुँह को कटोरे में भरे पारे के तल के नीचे ले जायँ। जब नली का मुँह पारे के भीतर पहुँच जाय तो अपना अँगूठा हटा लें। हम देखेंगे कि उस नली में पारा नीचे गिरने लगता है। पर नली पारे से एकदम खाली नहीं हो जाती, पारा थोड़ा-सा गिरता है और फिर ठहर जाता है। आगे वह नहीं गिरता। अब हमारे सामने नली के भीतर पारे का एक स्तम्भ है जो बिना किसी सहारे खड़ा हुआ है। पारा तो बहने वाली वस्तु है वह नीचे गिरकर कटोरे में क्यों नहीं भर जाता? वह कौन सी शक्ति है जो उसे सँभाले हुए है और नीचे गिरने से रोकती है?

हमने नली को पारे से पूरा भरा था। उसमें हवा शेष नहीं रह गई थी। जब हमने उसे औंधा किया तो पारा थोड़ा नीचे गिरा। थोड़ा स्थान रिक्त हुआ। इस रिक्त स्थान को भरने के लिए पारे में होकर हवा ऊपर नहीं गई। यह रिक्त स्थान बिलकुल शून्य स्थान है। वहाँ हवा बिलकुल नहीं है। तात्पर्य यह कि पारे के स्तम्भ के ऊपर किसी प्रकार का कोई भार या दबाव नहीं है। कहा जा सकता है कि ऊपर दबाव नहीं है इसलिए पारा नीचे नहीं गिरता। पर थोड़ा पारा नीचे उतरा था, और फिर रुक गया है। बात यह है कि ऊपर जो रिक्त स्थान है उसका पारे के गिरने या न गिरने से सीधा कोई सम्बन्ध नहीं है।

हो जाती है। थल का तापमान ऊँचा होता है और सागर का तापमान नीचा। वायु नीचे तापमान से ऊँचे तापमान की ओर बहती है।

रात्रि के समय सूर्य से ताप की किरणें नहीं पहुँचतीं। सागर का जल और थल की चट्टानें दोनों अपनी गरमी त्यागते हैं। चट्टानें अपना ताप शीघ्रता से छोड़ देती हैं पर
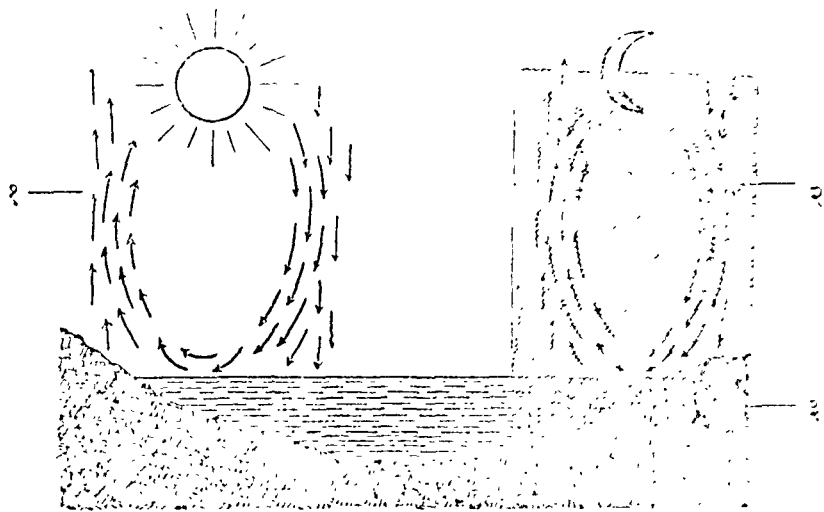
चित्र ३७. समुद्र की हवायें.

१. दिन में समुद्र से थल की ओर। २. रात्रि में थल से समुद्र की ओर। ३. थल.

समुद्र का जल धीरे-धीरे शीतल होता है। फल यह होता है कि रात्रि में थल की चट्टानें समुद्र के पानी से अधिक शीतल हो जाती हैं। सागर के ऊपर की गरम वायु हल्की होकर ऊपर की ओर जाती है तो उसका स्थान लेने के लिए थल की ठंडी वायु सागर की ओर आती है। वायु की गति रात्रि में थल से जल की ओर होती है। जल का तापमान ऊँचा होता है और थल का तापमान नीचा। वायु नीचे तापमान से ऊँचे तापमान की ओर बहती है।

२२६. व्यापारी पवनें—पृथ्वी पर सूर्य की गरमी पड़ती है। पृथ्वी लट्टू की भाँति घूमती है। वायुमण्डल पृथ्वी का एक भाग है। वह भी पृथ्वी के साथ घूमता है। वायुमण्डल थल की भाँति कठोर नहीं है इसलिए उसके घूमने में शिथिलता आ जाती है। अधिक आकर्षण और इस गति के कारण वायु की सघनता ध्रुव प्रदेश की ओर होती है, फलस्वरूप [illegible] पर वायुमण्डल विरल हो जाता है और वहाँ वायु का दबाव कम हो जाता है। क्योंकि पृथ्वी पर सूर्य की गरमी नियम के अनुसार आती है और पृथ्वी स्वयं एक नियम के अनुसार घूमती है इसलिए कुछ हवायें [illegible] भी पृथ्वी की सतह पर कुछ नियमों के अनुसार चलती हैं।

पृथ्वी के चारों ओर भूमध्यरेखा के आसपास एक शान्ति का [illegible] है। इस क्षेत्र

उत्तरी शांति क्षेत्र और उत्तरी ध्रुव क्षेत्र के बीच पवन दक्षिण-पश्चिम की दिशा से बहती है और दक्षिणी शांति क्षेत्र तथा दक्षिणी ध्रुव-क्षेत्र के बीच उत्तर-पश्चिम की दिशा से।

२३१. तूफान—हमारा वायुमण्डल पत्थर की भाँति अडिग नहीं है। वह बहने वाला है। तापमान का अन्तर उसे चंचल रखता है और उसमें नाना धारायें उत्पन्न करता रहता है। यह धारायें जब अत्यन्त शक्तिमान हो जाती हैं तो तूफान बन जाती हैं। हवा की बहुत बड़ी मात्रायें अत्यन्त तीव्र गति से समुद्र या थल के ऊपर दौड़ पड़ती हैं। एक मील प्रति मिनिट की गति इन तूफानों के लिए साधारण-सी बात है। पर ऐसे तूफान भी आते हैं जो एक मिनिट में चार मील दौड़ सकते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि ये तूफान जिस ओर होकर निकल जाते हैं उस ओर विनाश और बरबादी छा जाती है। ऐसे तूफानों की अधिक से अधिक चौड़ाई एक हजार मील पाई गई है।

२३२. बगूले—गर्मी के दिनों में बगूले सभी ने देखे होंगे। यह एक तेज़ी के साथ ऐंठता हुआ वायु का स्तम्भ होता है। गाँव वाले इसमें भूत का वास बताते हैं। इसके बीच में पड़ना खतरनाक समझा जाता है। शक्तिशाली बगूले बहुत चौड़े होते हैं, और बहुत हानि पहुँचाते हैं। इस हानि का कारण केवल उनकी तेज़ गति ही नहीं होती। बगूले के मध्य में वायु का दबाव बहुत कम होता है। उसके बीच में पड़ा मनुष्य वायु के अभाव में साँस घुटने से मर सकता है। जब कोई मकान एक विशाल बगूले के बीच में पड़ जाता है तो उसके आस-पास हवा का दबाव कम हो जाता है। उस समय यह बिल्कुल सम्भव है कि उसकी दीवारें भीतर की हवा के दबाव के कारण बाहिर को फट पड़ें। यह बगूले जब समुद्र पर दौड़ते हैं तो उनके बीच में पानी का खम्भा खड़ा हो जाता है। यह पानी का खम्भा उसी कारण से बनता है जिस कारण से बैरोमीटर में पारे का खम्भा बनता है। समुद्री जीव भी इस पानी के साथ खम्भे में उठ जाते हैं। जब यह बगूला किसी झील या तालाब के ऊपर होकर जाता है तो उसके पानी और जीवों को सोख लेता है और अपने चक्र में उड़ाता हुआ सैकड़ों मील दूर पहुँचा देता है। जब उसकी शक्ति क्षीण होने लगती है तो पानी नीचे गिर पड़ता है और मछलियाँ भी बरस पड़ती हैं। कभी-कभी समाचारपत्रों में जो आकाश से मछली-मेंढक बरसने के समाचार छपते हैं, उनका कारण यही बगूले हैं।

अध्याय १२

पदार्थ और शक्ति

२३६. जैव और अजैव—पृथ्वी के ऊपर हम अपने चारों ओर भाँति-भाँति के अनेक अस्तित्व देखते हैं। इन अस्तित्वों की जातियों की संख्या लाखों-करोड़ों में है। इन अस्तित्वों को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं। ये विभाग हैं—जीवित और अजीवित। जीवित विभाग के अंतर्गत सूक्ष्म कीटाणुओं से लेकर बड़ के समान विशाल वृक्ष हैं, और सूक्ष्म इक-कोटी जन्तुओं से लेकर हाथी और ह्वेल के समान विशाल जन्तु हैं। जो जीवित नहीं है, वह अजीवित है। अस्तित्व के अजीवित विभाग में नाइट्रोजन, ऑक्सीजन है, पारा तथा पानी है, धातुयें हैं, साधारण मिट्टी है और इस धरती की सतह पर फैली हुई भाँति-भाँति की चट्टानें हैं। पृथ्वी के भीतर जो तपती हुई चट्टानें [illegible] हुई हैं वे भी सब अजीवित ही हैं। जीवित अस्तित्व पानी में, धरती की सतह पर [illegible] में रहता है। पर अजीवित अस्तित्व सब स्थानों पर पाया जाता है। जीवित [illegible] निकल जाता है तो अजीवित शरीर अवशेष रह जाता है। जिन पदार्थों [illegible] से होता है वे पदार्थ जैव और अन्य पदार्थ अजैव कहलाते हैं। कोयला, [illegible], [illegible] आदि पदार्थ जैव हैं और नमक, पत्थर, लोहा आदि अजैव।

२३७. शक्ति के रूप—आँधी चलती है। पानी बहता है। पत्थर लुढ़कता है। आँधी में वृक्षों के तने घिसते हैं तो आग लग जाती है। ताप उत्पन्न होता है और प्रकाश चारों ओर फैल जाता है। पत्थर पर पत्थर गिरता है तो आवाज पैदा होती है। चुम्बक लोहे की ताली को खींचता है। बिजली झटका देती है और बल्ब जलाते ही [illegible] उठता है। अँधेरा दूर हट जाता है। यह सब घटनायें अजीवितों के [illegible] होती हैं। अजीवित स्वयं कुछ नहीं कर सकते तो फिर यह घटनायें इनमें कौन [illegible] अजीवितों के द्वारा इन घटनाओं का किया जाना जो सम्भव बनाता है उसे हम शक्ति कहते हैं। इस शक्ति को हम विभिन्न रूपों में देखते हैं। सनसनाता वायु, बहता पानी और लुढ़कते पत्थर में यह इसी गति के रूप में दृष्टिगोचर होती है। [illegible] यह गर्मी के रूप में प्रकट होती है। [illegible] गर्मी काफी तेज हो जाती है तो वह [illegible] प्रकाश [illegible] इधर-उधर फैलने लगती है। [illegible]

पर जब हम पानी में होकर एक रीति के अनुसार विद्युतधारा गुजारते हैं तो हमें पानी में से निकलकर दो गैसें प्राप्त होती हैं। ये गैसें हैं—हाइड्रोजन और ऑक्सीजन। अध्ययन से पता लगा है कि पानी का रासायनिक खण्डन होता है तो हाइड्रोजन और ऑक्सीजन मिलती है। पानी हाइड्रोजन और ऑक्सीजन के रासायनिक संयोग से बना है। इसका अन्तिम प्रमाण यह है कि जब हम हाइड्रोजन और ऑक्सीजन के मिश्रण को एक बर्तन में रखकर उसमें विद्युत की चिनगारी प्रवाहित करते हैं तो हाइड्रोजन और ऑक्सीजन एक निश्चित अनुपात में गायब हो जाता है, और पानी की बूँदें पात्र की दीवार से चिपकी हुई मिलती हैं। हाइड्रोजन और ऑक्सीजन में अलग-अलग हम चाहे कितनी देर तक विद्युत-धारा गुजारें, उनमें कोई परिवर्तन नहीं आता। लोहे, पारे, ताँबे में भी इस प्रकार के व्यवहार से कोई परिवर्तन नहीं आता।

वे पदार्थ जिनमें ताप, प्रकाश, विद्युत आदि के प्रभाव से कोई परिवर्तन नहीं आता, रासायनिक मूल तत्व कहलाते हैं। ऑक्सीजन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, कार्बन, गन्धक, पारा, लोहा, ताँबा, सोना आदि रासायनिक मूलतत्त्व हैं। मूलतत्त्वों की संख्या लगभग १०० है। हाइड्रोजन, जो पानी से ११,००० गुना हलका होता है, सबसे हलका रासायनिक मूलतत्त्व है। सबसे भारी रासायनिक मूलतत्त्व ओसमियम है। यह पानी से २२·५ गुना भारी है। सोना पानी से १९ गुना भारी होता है।

रासायनिक संयुक्त वे पदार्थ हैं जो दो या अधिक रासायनिक मूलतत्त्वों के संयोग से बने हों। किसी भी रासायनिक संयुक्त के निर्माण के लिए उसके निर्माता रासायनिक मूलतत्त्व एक निश्चित अनुपात में मिलते हैं। पानी एक रासायनिक संयुक्त है। यह हाइड्रोजन और ऑक्सीजन के संयोग से बना है। आयतन की दृष्टि से इस संयोग में दो भाग हाइड्रोजन और एक भाग ओक्सीजन हिस्सा लेते हैं। भार की दृष्टि से इस संयोग में २ भाग हाइड्रोजन और १६ भाग ओक्सीजन हिस्सा लेते हैं। १८ सेर पानी में १६ सेर ओक्सीजन होगी और २ सेर हाइड्रोजन। पानी कहीं भी हो, किसी प्रकार भी निर्मित हुआ हो, यह दोनों रासायनिक तत्व सदा इसी अनुपात में मिलेंगे। नमक भी रासायनिक संयुक्त है। यह सोडियम नामक धातु और क्लोरीन नामक गैस के रासायनिक संयोग से बना है। सोडियम एक चमकदार कोमल धातु है जो पानी में आग लगा देती है। क्लोरीन हलके हरे रंग की एक विषैली गैस है। दोनों के संयोग से जो नमक बनता है उसमें न पानी में आग लगाने की शक्ति होती है और न वह क्लोरीन की भाँति विषैला होता है। इसी प्रकार हाइड्रोजन और ऑक्सीजन दोनों गैसें हैं और उनके रासायनिक संयोग से निर्मित पानी तरल है। पानी के गुण उसको बनाने वाली गैसों के गुणों से बहुत भिन्न हैं। रासायनिक क्रिया के विषय में एक बात, जो विशेष ध्यान देने की है वह यह है कि संयुक्त के गुण रासायनिक क्रिया में भाग लेने वाले रासायनिक मूलतत्त्वों के गुणों से बहुत भिन्न हो जाते हैं

और ऑक्सीजन का संयुक्त है। पर कार्बन और ऑक्सीजन मिलकर एक अन्य यौगिक भी बनाते हैं। उसे कार्बन इक-ऑक्साइड कहते हैं। वह भी एक विषैली गैस है। अँगीठी के ऊपर हमें जो नीली लौ दिखाई देती है वह कार्बन इक-ऑक्साइड के जलने की लौ होती है। कोयले का कार्बन पहिले ऑक्सीजन से संयुक्त होकर कार्बन इक-ऑक्साइड बनाता है। यह कार्बन इक-ऑक्साइड जलता है तो फिर ऑक्सीजन से मिलता है, और कार्बन द्वि-ऑक्साइड बनता है। कार्बन इक-ऑक्साइड एक जलने वाली गैस है पर कार्बन द्वि-ऑक्साइड जलने वाली नहीं है।

इन रासायनिक क्रियाओं का आधार क्या है? इनकी इकाई क्या है? पदार्थ का सबसे छोटा खण्ड क्या है?—इन प्रश्नों के प्रति मनुष्य की उत्सुकता अत्यन्त पुरानी है। मीमांसाकारों ने सबसे लघु पदार्थ कण की कल्पना की है। प्राचीन यूनान के विद्वानों ने भी इस अत्यन्त लघु अविभाज्य कण का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। पर उनकी कल्पना का रासायनिक क्रियाओं से सीधा और प्रत्यक्ष कोई सम्बन्ध नहीं था। रासायनिक क्रियाओं को समझने और उन्हें एक नाप-तोल के आधार पर स्थिर करने की दृष्टि से सबसे लघु कण की जो कल्पना की गई थी, उसका श्रेय डाल्टन को है। यह सिद्धान्त डाल्टन का परमाणु-सिद्धान्त कहलाता है। रसायनशास्त्र के विकास में [illegible] सहायक सिद्ध हुआ है।

हम संसार में अनेक घटनायें देखते हैं । हम देखते हैं कि कोयला अँगीठी में धधकता है और फिर गायब हो जाता है । थोड़ी-सी राख पीछे छोड़ जाता है । पत्ता गिरता है, सूखता है और सड़कर गायब हो जाता है । लोहे के ऊपर लालिमा आती है, वह भुरभुरा पड़ता जाता है और मिट्टी में मिल जाता है । यदि पदार्थ का विनाश नहीं होता तो कोयला कहाँ जाता है ? पत्ती कहाँ जाती है ? और लोहा कहाँ जाता है ? पदार्थ की यह अनश्वरता कैसी है ?

जब अँगीठी में कोयला जलता रहता है, तो कोयले और वायुमण्डल की ऑक्सीजन के बीच रासायनिक संयोग होता है । कोयले का एक कार्बन परमाणु ऑक्सीजन के एक परमाणु से मिलता है और कार्बन एक-ऑक्साइड बनाता है । कार्बन एक-ऑक्साइड का एक अणु ऑक्सीजन के एक परमाणु से मिलता है और कार्बन द्वि-ऑक्साइड का एक अणु बन जाता है । यह कार्बन द्वि-ऑक्साइड, जैसा कि हम जानते हैं, एक गैस है । यह वायुमण्डल में उड़ जाती है । कोयले में जो हाइड्रोजन के परमाणु हैं वे ऑक्सीजन से मिलते हैं और भाप बनकर हवा में उड़ जाते हैं । कोयले में कुछ धातुएँ भी होती हैं । वे जब ऑक्सीजन से मिलती हैं तो राख या भस्म बनाती हैं । वे [illegible] ठोस होती हैं, अतः उड़ नहीं पाती और अँगीठी में पीछे बच जाती हैं । परमाणु [illegible] नहीं होते । वे अपने संयोग बदल लेते हैं । जलने की क्रिया में कार्बन और हाइड्रोजन के सब परमाणु ऑक्सीजन के साथ मिल जाते हैं । पर यह तो कहने की बात हुई । क्या यह प्रमाणित किया जा सकता है कि जलने से पदार्थ की कोई हानि नहीं होती !

२५१. परीक्षण—हाँ, एक बहुत सरल परीक्षण से हम यह प्रमाणित कर सकते हैं । हम काँच का एक ऐसा पात्र लें जो भली भाँति गरम किया जा सके । इस पात्र में थोड़ा-सा कोमल लकड़ी का कोयला पीसकर डाल दें । वायुमण्डल की ऑक्सीजन पात्र में उपस्थित है । अब हम पात्र के मुँह को एक रबर की डाट से ऐसा बन्द करें कि बाहर से वायु न बाहिर से जा सके और न भीतर से बाहिर आ सके । अब हम इस पात्र को तौल लें । जितना बोझ हो, उसे लिख लें । अब इस पात्र की पेंदी को, जहाँ कोयले का चूरा पड़ा हुआ है, गरम करें । कोयला गरम होगा और पात्र के वायुमण्डल में जो ऑक्सीजन है, उससे मिलेगा । कोयले के ऊपर थोड़ी राख जम जावेगी । क्योंकि पात्र में ऑक्सीजन बहुत कम होगी इसलिए थोड़ा-सा ही कोयला जलेगा । अब हम पात्र को ठंडा हो जाने दें और [illegible] जो उसमें लगा हो, उसे पोंछकर फिर तौल लें । हम देखेंगे कि पात्र का यह बोझ उतना ही है जितना कि पहिले था ।

की एक मात्रा होती है और इलेक्ट्रोन पर ऋण विद्युत की एक मात्रा। प्रोटोन की धन और इलेक्ट्रोन की ऋण विद्युत मात्रायें परस्पर एक दूसरे का इस प्रकार संतोष या निराकरण कर लेती हैं कि पूरा परमाणु विद्युत की दृष्टि से उदासीन रहता है। सम्पूर्ण परमाणु पर न ऋण मात्रा अनुभव होती है और न धन मात्रा।

२५४. न्यूट्रोन—इलेक्ट्रोन और प्रोटोन के अतिरिक्त परमाणु में एक और भी कण होता है। इस कण पर न ऋण विद्युत पाई जाती है, न धन विद्युत्। विद्युत गुण से हीन होने के कारण यह कण न्यूट्रोन कहलाता है। यह कण प्रोटोन के समान भार वाला होता है, और सदा केन्द्र में रहता है। ऑक्सीजन के परमाणु में केन्द्र में आठ प्रोटोन होते हैं और आठ न्यूट्रोन। आठ इलेक्ट्रोन इस केन्द्र के चारों ओर परिक्रमा देते हैं। दो भितरले खोल में और छः बहिरले खोल में। परमाणुओं के रासायनिक गुण उनके बहिरले खोल के इलेक्ट्रोनों की संख्या और उनकी योजना पर निर्भर करते हैं।

चित्र ८१
ऑक्सीजन का परमाणु
१. इलेक्ट्रोन, २. प्रोटोन, ३. न्यूट्रोन
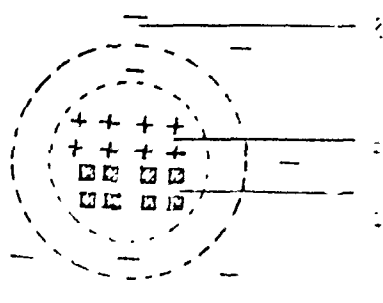
किसी रासायनिक तत्व के परमाणु के केन्द्र में न्यूट्रोनों की उपस्थिति से उसका परमाणु-भार तो बढ़ जाता है पर उसके रासायनिक गुणों में कोई परिवर्तन नहीं आता। ये न्यूट्रोन परमाणु की धन ऋण विद्युत-मात्रा योजना को प्रभावित नहीं करते। प्रोटोन और न्यूट्रोनों की संख्या मिलकर परमाणु विशेष का परमाणु भार बनाते हैं। जिस हाइड्रोजन के परमाणु में एक प्रोटोन होता है उसका परमाणु भार १ होता है। ऑक्सीजन का परमाणु भार ८ प्रोटोन + ८ न्यूट्रोन = १६ होता है।

भी रासायनिक प्रक्रिया में मुक्त होती है। इस रासायनिक प्रक्रिया के अन्तिम पदार्थ कार्बन द्वि-आक्साइड, पानी और नाइट्रोजन के ऑक्साइड होते हैं।

हमने देखा कि हमारी शक्ति का स्रोत रासायनिक प्रक्रिया है। इस रासायनिक प्रक्रिया में, जैसा हम पहले जान चुके हैं, परमाणु के केवल बहिरले खोल के इलेक्ट्रोन भाग लेते हैं। यह शक्ति परमाणुवों के पुनर्योजन में मुक्त होती है। बड़े अणु भंग होते हैं। छोटे अणु बनते हैं और शक्ति मुक्त होती है। परमाणु का केन्द्र इस प्रक्रिया में कोई भाग नहीं लेता।

२५८. परमाणु शक्ति—प्रोटोनों पर धन विद्युत होती है और इलेक्ट्रोनों पर ऋण। हमने देखा है कि एक गुण वाली विद्युत मात्रायें परस्पर एक दूसरे को विकर्षित करती हैं, और दूर हटाती हैं। परमाणु के केन्द्र में प्रोटोन इकट्ठे रहते हैं। धन विद्युतवान इन कणों को एक स्थान पर एकत्र करके रखने के लिए शक्ति का उपयोग हुआ होगा। यह शक्ति बहुत बड़ी शक्ति होगी। यह शक्ति उस केन्द्र में सुरक्षित है। क्या उसे मुक्त किया जा सकता है? उसका उत्तर परमाणु बम ने दिया है। प्रचण्ड विद्युतधारा द्वारा संचालित न्यूट्रोनों की मार से यूरेनियम के परमाणु का केन्द्र विघटित हो गया। [illegible] टूट गया और उसमें से जो शक्ति निकली, उसका अनुभव हिरोशिमा और नागासाकी ने [illegible] किया। वर्तमान संसार उस शक्ति के भय से काँप रहा है। परमाणुओं के केन्द्रों के [illegible] से जो शक्ति हमें प्राप्त होती है उसे हम परमाणु शक्ति कहते हैं। परमाणु शक्ति को [illegible] आदि चलने के काम में लाने के लिए बहुत प्रयत्न हो रहे हैं। इस दिशा में काफी सफलता प्राप्त भी हो चुकी है।

२५९. पदार्थ की नश्वरता—कुछ वर्ष पहिले तक पदार्थ और शक्ति दो पृथक्-पृथक् सत्तायें समझी जाती थीं। ऐसा समझा जाता था कि ये दोनों सदा, प्रकृति में सदा से अलग-अलग हैं और अलग-अलग रहेंगी। पर जैसे जैसे हमें परमाणु के विषय में अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त होता गया, इस विश्वास की जड़ हिलने लगी। आइन्स्टाइन नामक विश्वप्रसिद्ध वैज्ञानिक ने एक ऐसा सूत्र या गुर सामने रखा, जिससे पदार्थ और शक्ति के बीच एक स्थिर सम्बन्ध स्थापित हो गया। इस गुर की सहायता से विज्ञान का साधारण विद्यार्थी भी बता सकता है कि कितने पदार्थ के विनाश से कितनी शक्ति उत्पन्न होगी। इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि पहले जो पदार्थ की अनश्वरता की बात कही गई है वह असत्य है। अत्यन्त महान शक्ति की सहायता से ही पदार्थ का विनाश किया जा सकता है। साधारण दशाओं में पदार्थ अनश्वर है।

अध्याय १३

कोयला और तेल

२६१. स्थानान्तरण—मनुष्य ने जब गुफा में घर बनाया तो यह आवश्यक हो ा कि वह अपने जीवनयापन की अनेकों वस्तुओं को लाकर उस गुफा के निकट एकत्रित और वहाँ सपरिवार उनका उपयोग करे । यहीं से परिवहन की समस्या का जन्म ता । मनुष्यों तथा उनकी वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाने-ले जाने की धा और साधन मानव की वर्तमान सभ्यता के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्तम्भ हैं । आज मनुष्य शक्ति का बहुत बड़ा भाग वस्तुओं को स्थानान्तरित करने के साधनों पर व्यय होता है ।

२६२. घसीटा—आरम्भ में मनुष्य अपने सिर पर या कन्धे पर रखकर, पीठ लादकर या घसीटकर किसी वस्तु को अपने निवास-स्थान तक पहुँचाता था । धीरे-धीरे ने पशुओं को पालना व लिया । और तब, वह वारण वस्तुओं को पशुओं पीठ पर लादकर स्थाना-रित करने लगा । पर जो तुयें बहुत भारी थीं, जता से लादी नहीं जा
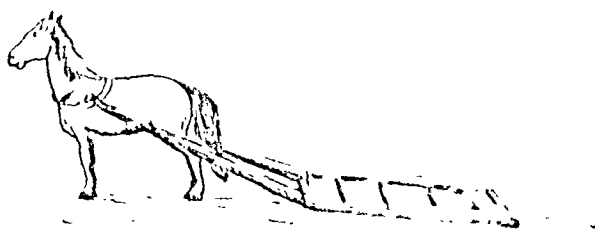
चित्र ४२.

ती थीं या जिनकी उपयोगिता धरती पर घसीटे जाने से कुछ कम नहीं होता था, उन् पशुओं द्वारा घसिटवाकर इधर से उधर ले जाने लगा । धीरे-धीरे उसने एक चौखटा ा लिया । वस्तुयें इस चौखटे पर रख दी जाती थीं और पशु को उस चौखटे में जोत ा जाता था । इस चौखटे को घसीटा कह सकते हैं । इस प्राचीन घसीटा का कुछ वर्तित रूप आज भी बर्फीले देशों में स्लेज के रूप में वर्तमान है ।

२६३. पहिया और गाड़ी—बर्फ से ढकी चिकनी भूमि पर घसीटने की आसानता ी हुई इसलिए वहाँ घसीटा चलता रहा । पर गर्म प्रदेशों की ऊबड़-खाबड़ भूमि पर ीटे को खींचने में बड़ी कठिनाई होती थी । कठिनाई आई तो एक बुद्धिमान मनुष्य को का हल भी सूझ गया । उसने वृक्ष के तने में से दो गोल टुकड़े काटे, उनके बीच में द करके एक मजबूत लकड़ी से उनको जोड़ा और फिर चौखटा को उठाकर पहियों के च उस लकड़ी के धुरे पर रख दिया । गाड़ी बन गई । पहिये का आविष्कार मनुष्य के रम्भिक आविष्कारों में सबसे महत्त्वपूर्ण आविष्कार कहा जा सकता है ।

एक बार गाड़ी बन गई तो आगे उसके रूप में सुधार होता रहा । उसने विभिन्न

बांधों के पास लगाये जाते हैं। इनकी सहायता से उत्पन्न की गई विद्युत् जल-विद्युत् या पनबिजली कहलाती है। इस बिजली को प्राप्त करने के लिए मशीन घुमाने में हमें कोयला या तेल नहीं जलाना पड़ता। चालक शक्ति हमें पानी से मुफ्त में प्राप्त हो जाती है। इस कारण जल विद्युत सस्ती पड़ती है।

२६६. वायु की शक्ति—मनुष्य ने सबसे पहले जिस अजीवित शक्ति से काम लिया वह वायु थी। वह सहस्रों वर्षों से वायु की अपार शक्ति को जानता था। जब तूफान आते थे तो वह किसी सुरक्षित स्थान पर छुप जाता था और विशालकाय वृक्षों को वायु के द्वारा उखाड़ा जाता हुआ देखता था। उसे वह देवता समझता था। उसे यह समझने में काफी समय लगा कि इस वायु की शक्ति का उपयोग वह अपने कार्य के लिए भी कर सकता है।

२६७. पालनौका—मनुष्य ने सबसे पहले वायु की शक्ति का उपयोग पाल की सहायता से नौका चलाने के लिए किया। जिस मनुष्य ने वायु की सहायता से नौका-संचालन की रीति निकाली वह निस्सन्देह ही एक महान आविष्कारक था। आज उसका नाम हमें ज्ञात नहीं, पर इतना हम जानते हैं कि मनुष्य आज से लगभग सात हजार वर्ष पहले भी पाल की सहायता से अपनी छोटी-छोटी नौका चलाया करता था।
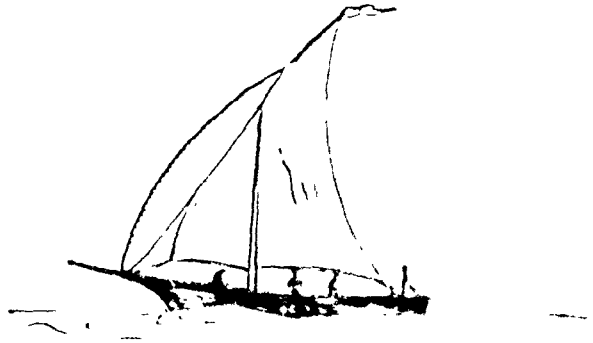
चित्र ४३. पाल नौका.

२६८. पवन चक्की—थल के ऊपर मनुष्य ने वायु की शक्ति से पहिये घुमाने का आविष्कार किया। पर यह आविष्कार सैकड़ों वर्ष बाद हुआ। मनुष्य के यह वायु-पहिये पवन चक्की कहलाये। इसलिए कि इनका उपयोग अन्न पीसने की चक्की घुमाने के लिए किया गया, यह पहिये [illegible] होते थे। इनके किनारे पर लम्बी-लम्बी लकड़ियाँ लगी होती थीं। इन लकड़ियों के [illegible]
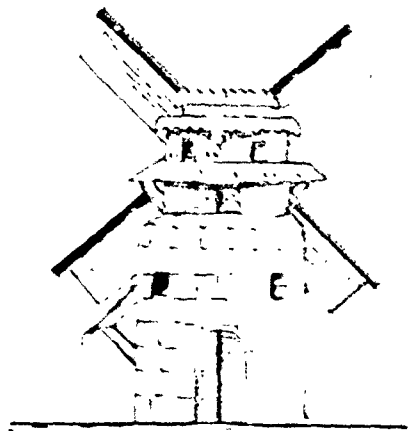
चित्र ४४. पवन चक्की.

पोले स्तम्भों में होकर ऊपर उठती थी, और पोले धुरों के मार्ग से गोले में पहुँचती थी। गोले में से वह छोटी-छोटी टोंटियों द्वारा बाहिर आती थी। भाप की इन दोनों धाराओं की शक्ति से वह गोला बड़े मजे से घूमता था।

जिस सिद्धान्त पर हीरों का वह इंजन बना था, उसी सिद्धान्त के आश्रय स्वर्गयान चलते हैं, राकेट चलते हैं और जेट-चालित वायुयान उड़ते हैं। इस हीरों के इञ्जन ने कुछ समय तक मनुष्यों का मनोरंजन किया और फिर सब लोग उसे भूल गये।

चित्र ५५.

७७३. ब्रैंका का भाप इंजन—लगभग १५०० वर्ष पश्चात् इटलीनिवासी ब्रैंका ने भाप से काम लेना विचारा। उसने चाहा कि वह भाप की सहायता से औषधि कूटे। उसने एक इंजन बना डाला। उसने बॉयलर का रूप मनुष्य की छाती और सिर जैसा बनाया। भाप मनुष्य के मुँह से निकलती थी और एक ओर एक फिरकनी से टकराती थी। फिरकनी घूमती थी तो उसमें लगी डंडी घूमती थी। यह डंडी एक ऐसे पहिये को घुमाती थी जिसमें दो मूसलियाँ लगी हुई थीं। पहिया घूमता था तो मूसलियाँ [illegible] उठती और गिरती थीं।
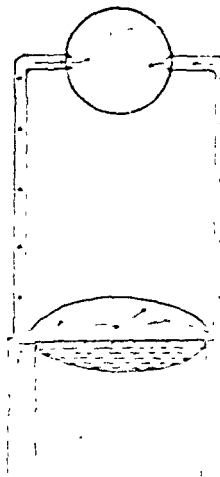
जब मनुष्य ने नई शक्ति की खोज गम्भीरता से आरम्भ की [illegible] और ब्रैंका दोनों के आविष्कार उपस्थित थे।

लगभग १६५० के आसपास इंग्लैण्ड में यह खोज [illegible] यह थी कि वहाँ की पत्थर के कोयले की खानों में पानी [illegible] वह पानी बाहिर न निकाला जाये कोयला नहीं खोदा जा सकता [illegible] गम्भीरता ध्यान में उस समय आती है जब कि हम यह [illegible] इंग्लैण्ड का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण ईंधन है।

यह पानी बैल और घोड़ों की सहायता से बड़े-बड़े डोलों [illegible] जाता था। पर ज्यों-ज्यों खानें गहरी होती जाती थीं उनमें [illegible] था। किसी-किसी खान में तो सहस्रों पशु दिन-रात [illegible] को लग रहा था कि वे हार रहे हैं। एक दिन पानी खानों को [illegible] बन्द करनी पड़ेगी। और दूसरी ओर आविष्कारक हीरो और [illegible] करके सोच रहे थे कि क्या घोड़ों के स्थान पर भाप [illegible] १६६३ में एक अंग्रेज एडवर्ड सोमरसेट ने [illegible] सहायता से पानी एक नल में ४० फीट ऊँचा उठा [illegible]

ऊपर को उठती थी और इसके साथ बहुत सा पानी बाहिर निकल पड़ता था। न्यूकोमेन के इस इंजन ने कोयले की खानों को बचा लिया। इंगलैंड कृतज्ञ हुआ।

न्यूकोमेन का इंजन धीरे-धीरे काम करता था। भाप को ठंडा होने में समय लगता था। पिस्टन एक मिनट में केवल बारह से पन्द्रह बार ऊपर उठ सकता था। लगभग ७४ वर्ष तक यह इंजन ऐसा ही उपयोग में आता रहा।

२७६. जेम्स वाट और उसका इंजन—वाट ने भाप-इंजन में सुधार किया और उसे उसका वर्तमान स्वरूप दिया। वाट एक मशीन सुधारने वाला था। वह बारीक और जटिल मशीनों की मरम्मत किया करता था। एक बार एक खान का न्यूकोमेन इंजन खराब हुआ तो वाट से उसकी मरम्मत करने को कहा गया। न्यूकोमेन का इंजन एक भोंडी मशीन थी। वाट उस इंजन की मरम्मत करना अस्वीकार कर सकता था, पर उसे मशीन से प्रेम था, उसने इंजन की मरम्मत करना स्वीकार कर लिया।

इंजन की मरम्मत करते समय उसने इंजन के भेद को समझा और इसके ऊपर विचार किया। वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि यह इंजन धीरे-धीरे चलता है। ईंधन अधिक खाता है और काम कम करता है। उसने सोचा कि एक अच्छा कारीगर इस इंजन में सुधार कर सकता है। पर अच्छा कारीगर तो वह स्वयं है। [illegible] इंजन में सुधार करे। और उसने परीक्षण का काम आरम्भ कर दिया।

वर्षों तक वह भाँति-भाँति के आकार में इंजन बनाता रहा पर [illegible] सन्तोष न दिया। भाप शीतल होने में काफी समय लेती थी और [illegible] आने-जाने की गति मंद रहती थी। अचानक एक विचार उसके मन में [illegible] नीचे आने के लिए भाप के ठंडे होने की प्रतीक्षा क्यों की जावे? सिलेंडर के [illegible] में भाप पहुँचाकर उसे नीचे धकेल क्यों न दिया जावे? बस, इस विचार के [illegible] उसने एक नवीन इंजन बनाया और उसे परखा।

भाप ने पिस्टन को सिलेंडर की छत तक पहुँचा दिया। तुरन्त ही सिलेंडर की छत में से भाप निकली और उसने उसे नीचे लौटा दिया। पिस्टन ऊपर-नीचे तेजी से आने-जाने लगा। इतनी तेजी से कि वाट को अपने नेत्रों पर विश्वास नहीं हुआ। यह इंजन अधिक शक्तिशाली था। थोड़ा कोयला खाता था और काम न्यूकोमेन के इंजन से अधिक करता था। उसके पिस्टन की गति बहुत तेज थी।

यह समाचार बहुत तेजी से फैल गया। बहुत से लोग उसके पास इंजन बनवाने आने लगे। वह उन लोगों से पूछता था कि तुम्हें यह काम करने के लिए कितने घोड़ों की आवश्यकता होती है। यदि वह कहता कि ५० घोड़ों की; तो वाट उसके लिए एक ५० घोड़ों की ताकत का ५० (हार्स पावर) का इंजन बना देता था। इंजन की शक्ति को नापने के लिए उसने हार्सपावर की नाप बनाई।

निकोलस ने उत्तर दिया, "परन्तु यह अधिक देर तक नहीं रुकती। मैं थोड़ी भाप बना लेता हूँ यह फिर चल पड़ती है।"

इंजन गरज रहा था। मित्र जोर से चिल्लाये, "फिर भी यह पागलपन है।"

उसने सुना नहीं। वह अपने भद्दे बड़े इंजन को एक मोड़ पर घुमाने का प्रयत्न कर रहा था। इंजन घूमा नहीं। वह धड़ाम से एक खाई में गिर पड़ा। लोगों ने शिकायत की, कि कुनो और उसके इंजन से खतरा है। बिचारा कुनो जेल में डाल दिया गया।

परन्तु आज हम कुनो को याद करते हैं। उन लोगों को नहीं, जो उस पर हँसते थे, या जिन्होंने उसे कैद कराया था। कुनो की बेघोड़ों की गाड़ी हमारी आज की रेल और मोटरों की पहली पुरखा है। रेलें पहले बनीं।

रिचार्ड ट्रेवीथिक इंगलैंड में उस समय पैदा हुआ था जबकि वाट अपना भाप-इंजन बना रहा था। जब वह लड़का था, तभी से खान में काम करने गया। वहाँ उसने पानी निकालने के भाप के इंजन को भक-भक करते देखा। इंजन ने उसे बहुत प्रभावित किया वह अपने आप छोटे भाप के इंजन बनाने लगा और उनसे परीक्षण करने लगा। १८०४ में उसने बॉयलर को पहिये पर रखा और बेघोड़े की गाड़ी बनाई। यह गाड़ी कुनो की गाड़ी से तेज चलती थी और इसकी भाप भी शीघ्र समाप्त नहीं होती थी। [illegible] रुके अधिक दूर न चल सकती थी।

ट्रेवीथिक ने सोचा, इसमें इंजन का कोई दोष नहीं। [illegible] है। इसमें कितने गढ़े हैं। जब पानी बरसता है तो कितना [illegible] कोई भाप का इंजन ऐसी सड़कों पर गाड़ी नहीं खींच सकता। [illegible] सड़कों के ऊपर लकड़ियों का फर्श बिछा दे। उसने देखा था कि गाड़ियों के सरलतापूर्वक खींचे जाने के लिए, सड़कों पर लकड़ी [illegible] था। यह फर्श रेल कहलाता था। तीन वर्ष पश्चात् उसने भाप का लोकोमोटिव बनाया। यह पहला रेल का इंजन था। यह [illegible] गति से चलता था। यह पाँच डिब्बे खींचता था, जिनमें दस [illegible] होते थे।

लगभग १५ वर्ष बाद १८१५ में हैकवर्थ और हेडले [illegible] कर्ताओं ने मिलकर एक रेल का इंजन बनाया। उन्होंने कुनो [illegible] रखी। इसमें कोयला बड़ी अच्छी तरह जलता था और [illegible] पड़ता जाता था। इसका नाम 'पफिंग बिली' पड़ गया।

और १८२९ में जार्ज स्टीफेन्सन ने अपना प्रसिद्ध इंजन [illegible] २९ मील प्रति घंटे की गति से चलता था।

घोड़े वालों ने रेल का बहुत विरोध किया। उन्होंने [illegible]

लोगों को जैसे अचानक पता लगा कि यह पेट्रोल या तेल का इंजन ही उनकी सड़क-परिवहन की समस्या का हल है।

२८१. तेल का इंजन—हम ने देखा कि भाप के इंजन के दो भाग हैं। बॉयलर और इंजन। कोयला इंजन के सिलिंडर से दूर बॉयलर में जलता है। पानी भाप बनकर कोयले की गर्मी को लेकर सिलिंडर में जाता है और वहाँ पिस्टन को धक्का देता है। बॉयलर भाप के इंजन का महत्त्वपूर्ण और बहुत भारी भाग है। यह बहुत सा स्थान घेरता है। तेल के इंजन में बॉयलर की आवश्यकता नहीं होती। तेल सिलिंडर के भीतर जलता है। इसलिए यह इंजन अन्तर्दहन या इंटरनल कम्बश्चन इंजन कहलाते हैं। इसका कर्म-चक्र चार अवस्थाओं में पूर्ण होता है।

(१) पिस्टन नीचे उतरता है और प्रवेश वाल्व के मार्ग से वायु तथा पेट्रोल की वाष्प का मिश्रण सिलिंडर में प्रवेश पाता है। यह अवस्था प्रवेश अवस्था कहलाती है।

(२) पिस्टन ऊपर उठता है। प्रवेश वाल्व बन्द हो जाता है और सिलिंडर में उपस्थित गैसों का मिश्रण खूब दब जाता है। यह अवस्था दबाव अवस्था कहलाती है।

(३) सिलिंडर के ऊपर के भाग में लगा प्लग विद्युत-चिनगारी [illegible] है। गैसों का मिश्रण भड़कता है। तापमान ऊँचा रहता है। कार्बन-डाइ-आक्साइड और पानी की भाप बनती है। यह गैसें फैलती हैं और पिस्टन [illegible] दिया जाता है। इस अवस्था को शक्ति अवस्था कहते हैं। इस अवस्था में ही [illegible] पहियों को पेट्रोल की शक्ति प्राप्त होती है।

(४) पिस्टन ऊपर उठता है। गैसें ठंडी हो जाती हैं। [illegible] द्वार खुल जाता है, और वह सिलिंडर से बाहिर निकल जाती है। [illegible] अवस्था कहलाती है।

भाप का इंजन बहुत काम में लाया जाता है। पर इस मशीन की योग्यता बहुत कम है। कोयले की जितनी शक्ति उसे दी जाती है उसका अधिक से अधिक १५ प्रतिशत ही हमें कार्य के रूप में प्राप्त होता है। तेल के इंजन की योग्यता इससे लगभग दुगनी होती है। तेल का इंजन भाप के इंजन से बहुत हलका होता है और इसमें [illegible] ईंधन भी कोयले की अपेक्षा सरलता से काम में लाया जा सकता है।

२८८. टरबाइन—पार्सन्स नामक अंग्रेज को १८८४ में टरबाइन बनाने में सफलता मिली। उसने एक छोटा-सा पहिया बनाया। इस पहिये के किनारों पर सैकड़ों पत्तियाँ लगाई गईं, और इस पहिये को एक धातु के खोल में बन्द कर दिया गया। जब भाप की धारा एक नली के मुँह से इन पत्तियों पर डाली गई तो वह पहिया तेज़ी से घूमने लगा और धुरे की सहायता से उसकी गति का उपयोग किया जाने लगा। टरबाइन साधारण भाप-इंजन से अधिक योग्य ही नहीं होती, वह बिना झटके दिये चलती है, तथा हलकी और छोटी होती है। विशालकाय जहाज जो समुद्रों को आश्चर्यजनक गति से पार करते हैं, टरबाइन द्वारा चलाये जाते हैं। संसार के सब बड़े-बड़े इंजन टरबाइन हैं।

हम अनेक प्रकार के इंजनों और टरबाइनों का उपयोग करते हैं। [illegible] इंजन या टरबाइन जिन्हें हम आवश्यकतानुसार, जहाँ चाहे वहाँ, ले जा सकते हैं, कोयले और तेल से शक्ति प्राप्त करके चलते हैं। यह कोयला और यह तेल [illegible] प्राचीन जीवों के शरीरों के अंश हैं। जिस शक्ति को प्राप्त करके आज हम [illegible] हैं, वह शक्ति लाखों-करोड़ों वर्ष पुरानी वनस्पति ने सूर्य से प्राप्त की [illegible] करके उसने अपना शरीर बनाया था। इस प्रकार, आज हम अपने [illegible] का उपयोग करते हैं जो लाखों करोड़ों वर्ष पूर्व इस पृथ्वी पर सूर्य से आई थी।

मशीन बनाई और उस हवा से भारी मशीन में प्रथम उड़ान की । यह दिसम्बर का महीना था । राइट भ्राताओं की मशीन हवा में ५९ सेकिण्ड रही और ८५२ फुट उड़ी । राइट भ्राताओं को विश्वास था कि वे अपनी उड़न मशीन में सुधार कर सकते हैं । उन्होंने अपने इंजन सुधारे, मशीन के पंख सुधारे । पाँच वर्ष के पश्चात् जो नवीन मशीन बनी, वह वायु में घंटे भर तक उड़ती रही । प्रथम महायुद्ध (१९१४—१९१८) की आवश्यकताओं के कारण इन उड़न मशीनों में बहुत से सुधार हुए । १९१८ से वे जहाज अमेरिका में डाक ढोने लगे थे । १९२१ में वे रात में उड़ने लगे थे । वे अमेरिका महाद्वीप को [illegible] घंटे में पार कर लेते थे । १९१९ में व्यापारी यात्री वायुयानों में किराया देकर यात्रा करने लगे ।

१९२७ में चार्ल्स ए० लिंडबर्ग ने अपनी एक जेब में सेन्डविचों के कुछ टुकड़े डाले और दूसरी जेब में एक नक्शा । वह न्यूयार्क से एक वायुयान में बैठकर अकेला उड़ा और बिना रुके ३,६१० मील की यात्रा करके ३३ घंटे में पेरिस [illegible] के इतिहास में यह घटना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थी । इसके पश्चात् वायुयान [illegible] साधन बन गये । देश-देश और नगर-नगर के बीच वायुयान आने- [illegible] यात्रियों के लिए यह सम्भव हो गया कि वे पेरिस में आगे [illegible]

साधारणतया हम देखते हैं कि हवाई जहाज [illegible] उसकी गति काफी तेज हो जाती है तो वह हवा में उड़ जाता है [illegible] भाग पानी से ढका हुआ है । हमें ऐसे हवाई जहाजों की [illegible] जिनको पानी पर उतरना पड़े । इस काम के लिए पानी पर [illegible] बनाये गये हैं । ऐसे जहाज अंग्रेजी में हाइड्रोप्लेन कहलाते [illegible] हवाई जहाज भी हैं जो चाहें तो जल पर उतर सकते हैं और चाहें [illegible] वायुयान जल-थल वायुयान कहलाते हैं ।

रखता है। वायुयान की दिशा-परिवर्तन करने और उसे नीचे उतारने तथा ऊँचे चढ़ाने के पुर्ज़े वायुयान की पूँछ में होते हैं। चालक या पायलट वायुयान के सामने के भाग में बैठा हुआ बटन दबाता या हत्था खींचता है। वायुयान की पूँछ का एक भाग तनिक-सी गति करता है और वायुयान का मुँह ऊपर को हो जाता है। परिचालकों की आँधी आकर तेज़ी से पंखों के नीचे टकराती है और वायुयान ऊपर चढ़ता जाता है। इसी प्रकार वायुयान का मुँह नीचे को कर देने से आँधी की शक्ति पंखों की तली पर नहीं अनुभव होती और वह हवाई जहाज़ को ऊपर नहीं उठाती। जब उद्धारक शक्ति नहीं मिलती तो वायुयान नीचे उतरने लगता है। पंखों का काम वायुयान को हवा में तैराना और सम्हालना है। पर उनसे एक काम और भी लिया जाता है। इन पंखों को मोटा, पर अत्यन्त मज़बूत बनाया जाता है। इनमें वह ईंधन भरा रहता है जिसको जलाकर वायुयान का इंजन परिचालक को घुमाता है और आँधी बनाता है।

निकलेंगी उतनी ही उनकी प्रतिक्रिया अधिक होगी। इस काम के लिए तेल के जलने से प्राप्त हुई गैसों को बाहिर निकलने देने से पहिले अच्छी तरह दबाया जाता है, और इस दबाने के लिए एक गैस टरबाइन उपयोग में लाई जाती है। होता यह है कि तेल
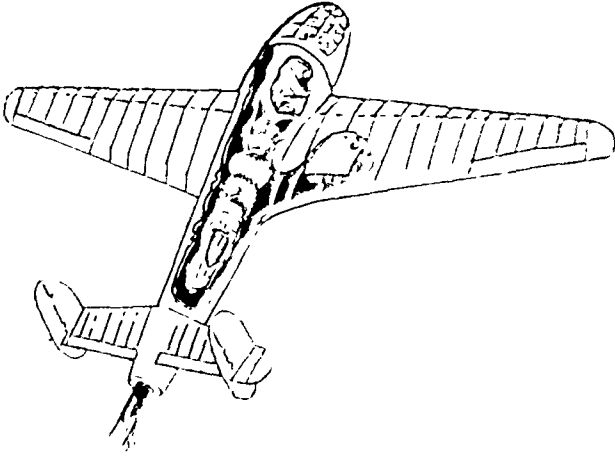
चित्र ५१. जेटचालित वायुयान

हैं, जहाँ उनकी अपनी विशेष उपयोगिता है । ऊँचे वायुमण्डल के अनुसन्धान के लिए उनका उपयोग किया जाता है । विभिन्न प्रकार के यन्त्र रखकर उन्हें उड़ा दिया जाता है ; वे एक ऊँचाई पर पहुँचते हैं, और वहाँ से नीचे गिरने लगते हैं । इस ऊपर आने-जाने में जो परिस्थितियाँ मिलती हैं उनका यन्त्रों पर प्रभाव पड़ता है । जब वे यन्त्र धरती पर लौटकर आते हैं, तो उन पर पड़े हुए इन प्रभावों का अध्ययन करके वैज्ञानिक उच्च वायु-मण्डल के विषय में ज्ञान प्राप्त करते हैं ।

स्थायी रूप है। हमारे स्वर के प्रभाव के नीचे सुई ने तवे पर ये लकीरें बनायी हैं। अब जब हम इस क्रिया को उल्टा करते हैं अर्थात् हम नहीं बोलते, तब हम तवे को ही सुई के नीचे घुमाते हैं। सुई तथा इस कम्पन के घर्षण से जो लहरें वायु में उत्पन्न होती हैं उनके प्रभाव अपने कान द्वारा ग्रहण करते हैं तो हमें इन्हीं स्वरों का अनुभव होता है जो गायक या वक्ता ने ध्वनि-ग्राहक यन्त्र के सामने उत्पन्न किये थे।

हम निकट होते हैं तो परस्पर बोल-चाल कर समाचार जान सकते हैं। सौ दो सौ गज की दूरी से चिल्लाकर बातें भी की जा सकती हैं। पर बहुत अधिक दूरी हो तो हमें मनुष्य की आवाज नहीं सुनाई देती। ध्वनि या स्वर वायु के माध्यम से चलता है और इसकी गति लगभग १,१०० फुट प्रति सेकिंड होती है।

३०४. बिजली की घंटी—जोज़ेफ़ हेनरी नामक एक नवयुवक संयुक्त राज्य अमरीका के न्यूयार्क राज्य में अल्बनी नामक स्थान पर रहता था। वह शिक्षक था। पर उसे विद्यार्थियों को पढ़ाने में इतना आनन्द नहीं आता था जितना कि वैज्ञानिक परीक्षण करने में। १८३१ में एक दिन उसने एक मील लम्बा तार लिया। उसे एक कमरे के चारों ओर लपेटा। उसने तार के एक सिरे से विद्युत्धारा दौड़ाई तो तार के दूसरे सिरे पर लगी हुई घण्टी बज उठी। जोज़ेफ़ के लिए यह एक खिलौना था, पर विद्युत के उपयोग के इतिहास में यह एक महत्त्वपूर्ण घटना थी।
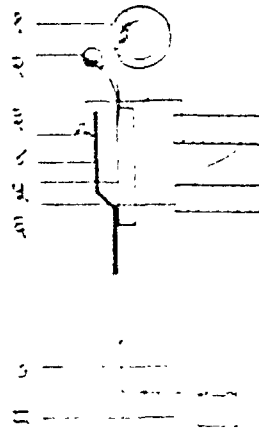
न्यूयार्क से सानफ्रांसिस्को और रोम से पेरिस समाचार मोर्स की इस संकेतन-विधि द्वारा आने-जाने लगे।

३०८. समुद्री तार—लोगों ने कहा, "यदि हम समुद्रों में तार बिछा दें तो सारा संसार एक सूत्र में बँध जायेगा।"

और तब साइरस डब्लू. फील्ड ने जैसे कहा, "हम निश्चय ही इस तार को बिछा सकते हैं। हम एक जहाज पर दो हजार मील लम्बा मजबूत तार लादेंगे और यात्रा आरम्भ कर देंगे। जैसे-जैसे आगे बढ़ते जायेंगे तार को छोड़ते जायेंगे।"
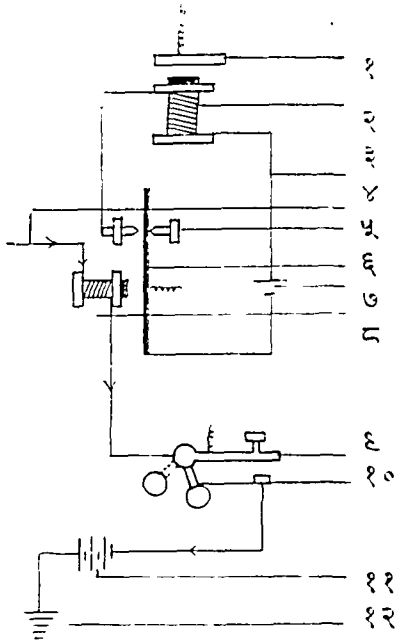
चित्र ५४. तार व्यवस्था की रूपरेखा.

१. ध्वनि उत्पादन करने वाली लोहे की नली. २. स्थानीय विद्युत चक्र का चुम्बक, ३. स्थानीय विद्युत चक्र, ४. दूसरे स्टेशन से आने वाली तार की लाइन, ५. स्पर्श कील, ६. स्थानीय चक्र की लोहे की पत्ती, ७. स्थानीय बैटरी, ८. रिले, ९. कुंजी (की), १०. विद्युत सम्बन्ध, ११. बैटरी, और १२. धरती.

लोगों ने कहा, "ऊँह, तार आधी दूर पहुँचने से पहले ही टूट जायेगा।" और उनकी यह आशंका सत्य निकली। बहुमूल्य तार को सागर की तली में पड़ा छोड़कर,

जब तारघर एक दूसरे से बहुत दूर होते हैं तो इन दोनों तारघरों के बीच विद्युत्-चक्र बहुत बड़ा हो जाता है। विद्युत् को बहुत लम्बा मार्ग तय करना पड़ता है। इससे उसकी शक्ति अत्यन्त क्षीण हो जाती है। यह शक्ति इतनी क्षीण हो जाती है कि दूसरे तारघर में जाकर वहाँ के ध्वनि-उत्पादक में ध्वनि नही उत्पन्न कर सकती। इसका अर्थ यह हुआ कि यह क्षीण विद्युत् धारा उस तार घर के विद्युत् चुम्बक में इतनी चुम्बक-शक्ति नहीं उत्पन्न कर सकती कि वह चुम्बक उस तारघर की ध्वनि-नली मे लगे स्प्रिंग की शक्ति को जीत ले और उसे अपनी ओर आकर्षित कर ले। इस कठिनाई को दूर करने के लिए दो काम किये जाते है। बड़े विद्युत्-चक्र मे एक रिले डाल दिया जाता है। और उस रिले की सहायता से एक स्थानीय विद्युत्-चक्र को क्रियाशील बनाया जाता है। इस चक्र में एक काफी शक्तिवान बैटरी होती है। रिले एक विद्युत्-चुम्बक होता है। जब कुंजी दबाने से बड़े चक्र में विद्युत्-धारा दौड़ती है तो रिले में चुम्बकता आ जाती है। यह चुम्बकता स्थानीय चक्र में लगी हुई एक पतली लोहे की पत्ती को खींचती है। लोहे की पत्ती रिले की ओर खिंचती है तो उसका सम्पर्क स्पर्श-कील से हो जाता है। यह सम्पर्क होते ही स्थानीय चक्र में विद्युत् दौड़ने लगती है। यह विद्युत् जब स्थानीय विद्युत्-चक्र के विद्युत-चुम्बक में पहुँचती है तो इस विद्युत्-चुम्बक मे चुम्बकता आ जाती है। और ध्वनि-नली उसकी ओर खिंच आती है। जब बड़े चक्र मे विद्युतधारा टूट जाती है तो स्थानीय चक्र की लोहे की पत्ती रिले से दूर हट जाती है। स्पर्श-कील से इस पत्ती का सम्पर्क टूट जाता है। स्थानीय चक्र में विद्युत्धारा बन्द हो जाती है। स्थानीय चक्र में विद्युत्-चुम्बक की चुम्बकता जाती रहती है, और ध्वनि नली अपने स्प्रिंग से खिंचकर विद्युत् चुम्बक से दूर चली जाती है तथा एक धातु के खण्ड से टकराकर गट्ट का स्वर उत्पन्न करती है। यह स्थानीय विद्युत्-चक्र इस प्रकार क्षीण शक्तिवान बड़े विद्युत् चक्र की सहायता करता है। यह उसके प्रभाव को बढ़ाता है इसलिए संवर्द्धक भी कहा जा सकता है।

इन दिनों अनेक देशों में बहुत से मनुष्य विद्युत् के साथ भाँति-भाँति के परीक्षण कर रहे थे। मोर्स की संकेतन-विधि ने समाचार संचार में एक क्रान्ति उत्पन्न कर दी थी। अमरीका के मैसाशुयेट्स नामक स्थान पर एक ठंडे कमरे में भी एक मनुष्य इस प्रकार के काम में लगा हुआ था। इस मनुष्य का नाम ग्राहम बेल था।

३०९. ग्राहम बेल—बेल के पिता वाणी-विशेषज्ञ थे। वे गूंगों को बोलना सिखाते थे। उन्हें ज्ञात था कि बालक जो शब्द सुनते हैं उन्हीं को दुहराते हैं तो बोलना सीखते हैं। जो बालक शब्द को सुन ही नहीं सकता, वह नहीं जानता कि नकल किसकी करे। फल यह होता है कि वह बोलना नहीं सीख पाता और गूँगा रह जाता है। मनुष्य यदि बोलना सीख सकता है तो जीभ और ओठों की गति तथा कण्ठ की पेशियों के कम्पन की नकल

प्रसारक में पतली धातु की झिल्ली होती है। उसके पीछे एक छोटी-सी डिबिया होती है। इस डिबिया में काजल या कार्बन के छोटे-छोटे खण्ड भरे होते हैं। यह खण्ड बहुत सघन नहीं भरे होते ढीले-ढाले भरे होते हैं। क्योंकि काजल खण्डों में सम्पर्क अच्छा नहीं होता इसलिए इस विद्युत्-चक्र में विद्युत्-धारा हल्की-हल्की प्रवाहित
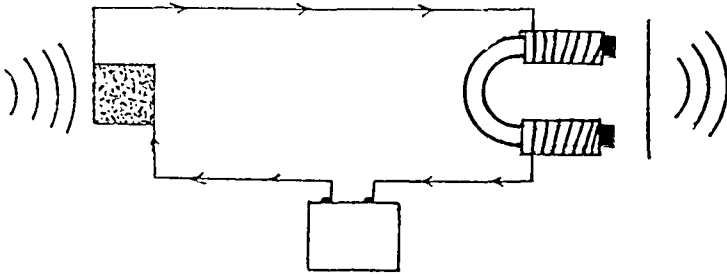
चित्र ५५. टेलीफोन व्यवस्था की रूपरेखा.

होती रहती है। जब मनुष्य प्रसारक के सामने बोलता है, तो उसकी वाणी के आघात से निर्मित वायु की तरंगें आकर प्रसारक की धातु की झिल्ली से टकराती हैं। झिल्ली इन तरंगों के आघात से काँपने लगती है। जब तरंग अधिक शक्तिवान होती है तो झिल्ली डिबिया के भीतर की ओर अधिक झुकती है और जब तरंग दुर्बल होती है तो कम। जब झिल्ली भीतर को अधिक दबती है तो डिबिया में भरे काजल खण्ड परस्पर निकट आ जाते हैं। उनका पारस्परिक सम्पर्क बढ़ जाता है, और विद्युत्-धारों में अधिक विद्युत् दौड़ने लगती है। जब झिल्ली भीतर को कम दबती है तो काजल खण्ड अपेक्षाकृत दूर-दूर रहते हैं और विद्युत्-चक्र में विद्युत्-धारा कम दौड़ती है। यह झिल्ली जिस प्रकार काँपती है उसी प्रकार का कम्पन विद्युत्-धारा में उत्पन्न हो जाता है।

ग्राहक में भीतर की ओर एक विद्युत्-चुम्बक और बाहिर को ओर एक झिल्ली होती है। जब विद्युत् धारा की शक्ति बढ़ती है तो ग्राहक के विद्युत्-चुम्बक की चुम्बकता भी बढ़ जाती है। और ग्राहक की झिल्ली विद्युत्-चुम्बक की ओर अधिक आकर्षित होती है। जब विद्युत्-चक्र में विद्युत्-धारा कम शक्तिशाली होती है तो विद्युत्-चुम्बक की चुम्बकता भी कम शक्तिशाली होती है और ग्राहक की झिल्ली भी कम आकर्षित होती है। विद्युत्-धारा में विद्युत्-शक्ति का कम्पन इस प्रकार ग्राहक की इस लोहे की झिल्ली में कम्पन उत्पन्न करता है। ग्राहक की झिल्ली के कम्पन से झिल्ली के निकट की वायु काँपने लगती है और जो ध्वनि तरंगें मनुष्य ने प्रसारक को दी थी वे वैसी ही ग्राहक से वायु में प्रसारित होने लगती हैं। यह तरंगें सुनने वाले के कान के पर्दे से टकराती हैं और उसे उस ध्वनि का बोध कराती हैं जो कितने ही मील दूर बैठे बोलने

तीन वर्ष पश्चात् उसने अपनी इस 'तारहीन' विधि से २,००० मील चौड़े अटलांटिक महासागर के पार समाचार भेजने में सफलता प्राप्त की। मारकोनी की इस 'तारहीन' विधि से समुद्र में यात्रा करते जहाज, थल पर स्थित तारघरों से समाचार प्राप्त करने लगे और उन्हें अपने समाचार भेजने लगे। दुर्घटनाओं के अवसर पर जहाजों की सहायता करना सरल हो गया। समुद्र-यात्रा पहिले से अधिक निरापद हो गई।

मोर्स के टेलीग्राफ़ या दूरलेखन की गट्ट-गर-गट्ट टेलीफोन की दूर-ध्वनि में परिवर्तित हो गई। इसी प्रकार तारहीन विधि द्वारा भेजी गई क्लिक-क्लिक रेडियो की वाणी बन गई। फ्लेमिंग नामक इंजीनियर मारकोनी के साथ काम करता था। उसने रेडियो नलिका या शून्य नलिका का आविष्कार किया। इस नलिका की सहायता से विद्युत चुम्बकीय तरंगों को ग्रहण किया जा सकता था। एक अमरीकन डिफारेस्ट ने संवर्द्धक का आविष्कार किया। इस संवर्द्धक की सहायता से अत्यन्त क्षीण विद्युत् संकेतों को ऐसी ध्वनि में परिवर्तित किया जा सकता है जो सरलता से सुनाई पड़ सके। इनके अतिरिक्त अन्य बहुत से वैज्ञानिकों के विचार इस तारहीन दूर-ध्वनि को विकसित करने के लिए उपयोग में लाये गये। १९२० में सबसे पहिले रेडियो स्टेशन स्थापित हुए।

३१५. तारहीन ध्वनि-प्रसारण—तारहीन विधि से ध्वनि को दूर-दूर प्रसारित करने के लिए जिस पुर्जे का उपयोग सबसे मौलिक और महत्त्वपूर्ण है, वह है रेडियो नलिका या शून्य नलिका। शून्य नलिका में से यथासम्भव वायु निकाल ली जाती है। उसके भीतर तीन अंग होते हैं। फिलैमेंट या बारीक तन्तु, प्लेट या पत्र और ग्रिड या व्यवधान। तन्तु या फिलैमेंट में एक विद्युत-धारा संचारित की जाती है जिससे वह तन्तु साधारण बल्ब के तन्तु की भाँति चमककर प्रकाश देने लगता है। जब यह तन्तु-तार दहकता है तो उसमें से इलेक्ट्रनों की धारा निकलती है। हम जानते हैं कि इन इलेक्ट्रनों पर ऋण विद्युत् मात्रा होती है। पत्र या प्लेट को विद्युत् के

चित्र ५६. रेडियो नलिका. १ पत्र, २ व्यवधान, और ३ बारीक तन्तु

स्रोत से इस प्रकार जोड़ा जाता है कि पत्र पर धन विद्युत होती है। यह धन विद्युत्वान पत्र ऋण विद्युत्वान इलेक्ट्रनों को अपनी ओर आकर्षित करता है और इस प्रकार इस रेडियो नलिका के भीतर एक विद्युत्-धारा बह निकलती है। ग्रिड या व्यवधान एक बारीक तार की बनी जाली होती है। यह तन्तु और पत्र के बीच में स्थापित की जाती है। यह बाहिरी विद्युत् चक्र से इस प्रकार जोड़ी जाती है कि इस पर एक बार ऋण विद्युत् होती है और दूसरी बार धन विद्युत्। और यह ऋण धन विद्युत् परिवर्तन बहुत जल्दी-जल्दी होता है। जब इस व्यवधान पर धन विद्युत् होती है तो यह व्यवधान इलेक्ट्रनों को तन्तु की

धाराओं को एक साथ ग्रहण करले तो एक गड़बड़ी मच जायेगी और हमारे पल्ले एक विचित्र कोलाहल के अतिरिक्त और कुछ नहीं पड़ेगा। ग्राहकों में ऐसा प्रबन्ध होता है कि हम जितनी लम्बाई की तरंगों को चाहें उन्हीं को वह ग्रहण करे और शेष के प्रति उदासीन हो जाये। इस प्रबन्ध को हम ट्यूनिंग कहते हैं। इसे स्वर-संधान कहा जा सकता है। जब हम अपने रेडियो ग्राहक के बाहिर लगी घुंडी को पकड़कर घुमाते हैं, तो ग्राहक के भीतर लगे कंडेंसर नामक पुर्जे में परिवर्तन होता है। और एक स्थान ऐसा आ जाता है जब कि हमारे रेडियो ग्राहक में लगा विद्युत्-चक्र उतनी ही कम्पन गति से काँपने लगता है जितनी कम्पन गति की तरंग हम ग्रहण करना चाहते हैं।

एरियल से बदलती (आल्टरनेटिंग) क्षीण विद्युत्-धारा हमारे रेडियो ग्राहक में आती है, वहाँ शून्य नलिकायें उसे शक्तिशाली बनाती हैं और उसे एक न्यूनाधिक शक्ति दर्शाने वाली सीधी विद्युत्-धारा में परिवर्तित कर देती हैं। यह सीधी विद्युत्-धारा अन्य नलिकाओं द्वारा और भी अधिक शक्तिशाली बनाई जाती है। अब यह एक ध्वनि-ग्राहक को प्रभावित करती है जो उसे गायक की मूल ध्वनि में परिवर्तित कर लेता है और एक उद्घोषक द्वारा जोर से हमें सुना देता है।

एक सरल रेडियो ग्राहक के तारों की योजना नीचे दिये चित्र के अनुसार होती है।
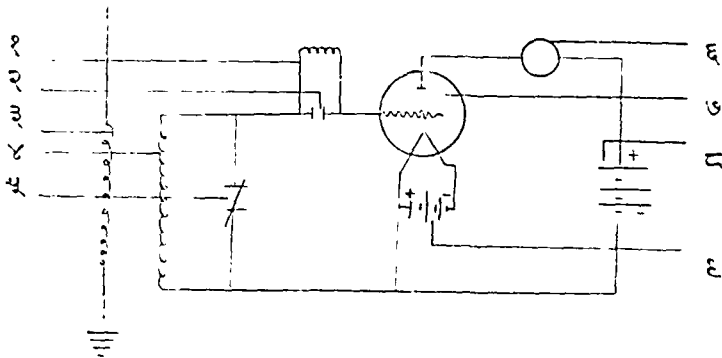
चित्र ५७ रेडियो रिसीवर या ग्राहक की व्यवस्था.

१. ग्रिड लीक, २. ग्रिड कंडेंसर, ३. रिसीवर के भीतर एरियल का भाग, ४. एरियल से कम्पन ग्राहक, ५ परिवर्तनीय कंडेंसर, ६. ध्वनि-ग्राहक, ७. रेडियो-नलिका, ८ 'ब' बैटरी और ९. 'अ' बैटरी.

तारहीन विधि द्वारा मनुष्य बहुत दूर की वाणी सुनने में समर्थ हो गया। इसकी सहायता से समुद्र में तैरते, आकाश में उड़ते तथा वनों और निर्जन प्रदेशों में अनुसन्धान करते हुए मनुष्य अपनी स्थिति और अपने अनुभव की सूचना संसार को देने लगे। जगत्-

जैसे कि सम्पूर्ण चित्र एक साथ ही भेजा जा रहा हो। यह वास्तव में हमारे नेत्रों का भ्रम होता है। हम सिनेमा में चलचित्रों को देखते हैं। मार-पीट और उछल-कूद की घटनायें ऐसी दिखाई पड़ती हैं जैसे कि सचमुच बिना बीच में टूटे होती आ रही हों। पर बात ऐसी नहीं होती। मार-पीट की एक घटना को कई खण्डों में विभाजित कर प्रत्येक के चित्र अलग अलग लिये जाते हैं। और इन पृथक्-पृथक् चित्रों को इतनी तेजी से दर्शकों के नेत्रों के सामने लाया जाता है कि दर्शकों को एक पूरी घटना का भ्रम होता रहता है। १६ चित्रों से अधिक चित्र प्रति सेकिण्ड हमारे नेत्रों के सामने आने से हम में वैसा भ्रम उत्पन्न हो जाता है।
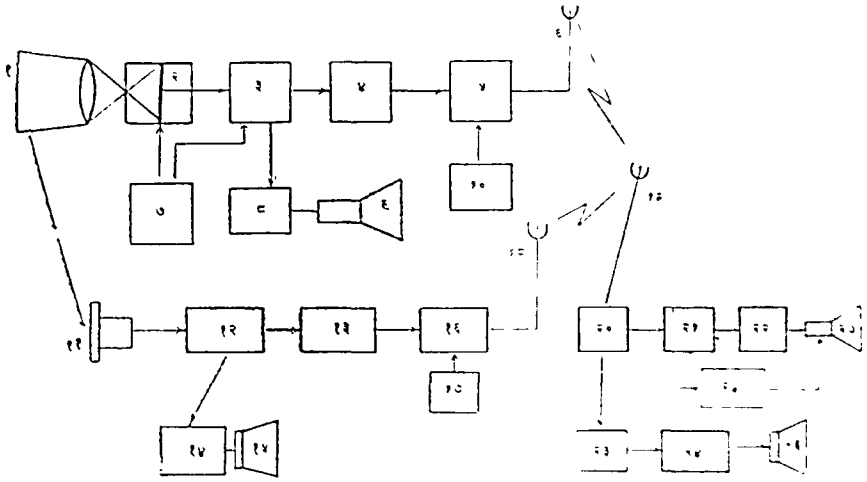
चित्र ५८ चित्र-प्रसारण की योजना.

१. दृश्य, २. दृश्य का चित्र, ३ संवर्द्धक, ४ वाहक तरगो पर प्रभाव पड़ना, ५ संवर्द्धक, ६. दृश्य प्रसारक एरियल, ७. विभाजन और संगति, ८. परीक्षक, ९. चित्र (प्रसारन के स्थान पर), १०. शक्ति का स्रोत, ११. दृश्य का ध्वनि-प्रसारक, १२. संवर्द्धक, १३. वाहक तरंगों पर प्रभाव, १४. परीक्षक, १५ ध्वनि (प्रसारण स्थान पर), १६. संवर्द्धक, १७. शक्ति का स्रोत १८ ध्वनि-प्रसारक का एरियल, १९. रिसीवर का एरियल, २०. ग्रहण की हुई शक्ति, २१. चित्र ग्राहक, २२. संवर्द्धक, २३ ध्वनि ग्राहक, २४. संवर्द्धक, २५. योजना और संगति, २६. रिसीवर का लाउडस्पीकर और २७. रिसीवर का चित्रपट.

चित्र-प्रसारण के लिए भी यही किया जाता है। जिस घटना का चित्र प्रसारित करना है उसके और प्रकाश-विद्युत् कोट के बीच एक ऐसा पुर्जा रखते हैं जो उस घटना

जाता है। इस प्रकार अदृश्य वस्तु का तुरन्त पता लगा लेने के लिए जो यन्त्र काम में आता है उसे रैडर कहते हैं। रैडर शब्द 'रेडियो' के रेड और 'रेंजिंग' के र को मिलाकर बना लिया गया है। इसका अर्थ होगा रेडियो द्वारा पता लगाना। पिछले महायुद्ध में जब जर्मनी के बमवर्षक सैकड़ों की संख्या में ब्रिटेन के ऊपर आक्रमण करते थे, उस समय अंग्रेज वैज्ञानिकों ने रैडर बनाया था। इसकी सहायता से जर्मनी के बमवर्षकों की उपस्थिति दूर से ही जान लेते थे और उनके लड़ाके वायुयान इनसे लोहा लेने के लिए ठीक समय पर आकाश में उड़ जाते थे। ब्रिटेन की रक्षा करने में सबसे महत्त्व भाग कदाचित् रैडर ने ही लिया है।

रैडर की उपयोगिता केवल युद्ध-काल तक ही सीमित नहीं है। वह शान्ति काल में भी अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हो रहा है। रैडर वास्तव में मनुष्य की आँख बन गया है। उसकी सहायता से मनुष्य अँधेरे और धुन्ध में सरलता से देख सकता है। आजकल प्रत्येक महत्त्वपूर्ण वायुयान पर रैडर लगा रहता है। उसकी सहायता से वे अँधेरे में भी वायु-अड्डों पर सुरक्षापूर्वक उतर सकते हैं।

की है, पर खनिज शब्द का उपयोग केवल धातुओं के खनिजों के लिए ही नहीं होता, वह उन अन्य सब पदार्थों के लिए भी होता है जो खान मे निकाले जाते हैं। अधातु खनिज में पत्थर हैं, मुलतानी और चीनी मिट्टियाँ हैं, अस्बस्टस है। अस्बस्टस एक हल्के प्रकार का खनिज होता है जो आग मे जलता नहीं। खानों मे केवल अजैव पदार्थ—धातु, पत्थर, मिट्टी आदि ही नहीं निकाले जाते, वरन् जैव पदार्थ भी निकाले जाते हैं। इन जैव खनिजों में पत्थर का कोयला और पेट्रोलियम अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

३९२. अजैव और जैव—पत्थर का कोयला अत्यन्त प्राचीन काल के वृक्ष शरीरों का अवशेष है। पेट्रोलियम वृक्ष शरीरों और जीव शरीरों से स्रवित हुआ तरल है जो धरती के भीतर सघन चट्टानों के नीचे एकत्रित होकर रह गया है। जहाँ पर चट्टाने सघन नहीं होतीं, भुरभुरी होती हैं, वहाँ इन जैव शरीरों के लवण और रसायनिक खण्डन से बनी गैसें धरातल में से निकलती रहती हैं। अमरीका के कुछ स्थानों पर ऐसी गैस बहुत बड़े परिमाण में निकलती है और उसे जलाने के काम में लाया जाता है। भारत के पश्चिमी तट पर, काठियावाड़ में भी इस प्रकार की गैस की उपस्थिति पायी जाती है, पर यहाँ पर उसका परिणाम बहुत ही कम है।

हम खनिजों को दो विभागों में बाँट सकते हैं—जैव खनिज और अजैव खनिज। अजैव खनिजों में जिन खनिजों से धातु निकाली जाती है, उन्हें हम धातु खनिज, और जिनसे धातु नहीं निकाली जाती उन्हें अधातु खनिज कह सकते हैं।

पानी को भी हम धरती में से खोदकर निकालते हैं और पेट्रोलियम को भी। पर पानी को खनिज नहीं कहते; पेट्रोलियम को कहते हैं। इसका कारण कदाचित यह है कि पानी प्रतिवर्ष आकाश से बरसता है, धरती में सोझता है और सोतों के मार्ग से धरती मे बहता हुआ हमारे कुओं में पहुँचता रहता है। कुआ का पानी कभी समाप्त नहीं होता। जो कुएँ गर्मी में सूख जाते हैं उनमें भी वर्षा में पानी आ जाता है। पर पेट्रोलियम के कुओं में ऐसी बात नहीं होती। जब पेट्रोलियम के कुएँ में से सब पेट्रोलियम निकाल लिया जाता है तो वह कुआँ सूख जाता है। उसमें किसी भी ऋतु में और पेट्रोलियम नहीं आता। उस कुएँ को छोड़ देना पड़ता है। अर्थात् पेट्रोलियम समाप्त हो जाता है। कोयले, लोहे आदि की खानों के विषयों में भी यही बात नहीं है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि किसी भी देश की खनिज सम्पत्ति अनन्त नहीं होती। उसका परिमाण सीमित होता है। जब तक मनुष्य को इस तथ्य का ज्ञान नहीं था तब तक उसने खनिजों का उपयोग लापरवाही से किया। पर अब जब उसे खनिजों की सीमा ज्ञात हो गई है तो वह उनका उपयोग सतर्कता से करने लगा है। वह प्रत्येक खनिज के कण-कण से पूरा लाभ उठाने का प्रयत्न करता है और अपने देश की खानों को यथासम्भव दीर्घजीवी बनाना चाहता है।

चाहिए कि भट्टी में अपने ऊपर पड़े खनिजों के बोझ के नीचे पिसकर चूर चूर न हो जाय और इतना छिद्रमय भी होना चाहिए कि नीचे से आने वाली गर्म गैसों को अपने भीतर होकर बे-रोक-टोक ऊपर तक चला जाने दे।

साधारण पत्थर का कोयला धुवाँ देता है और अधिकतर बॉयलरों में भाप बनाने के काम में आता है। इसलिए वह स्टीम कोल कहलाता है। अंग्रेजी भाषा में कोल का अर्थ है पत्थर का कोयला। लकड़ी के कोयले को उस भाषा में चारकोल कहते हैं।

३२४. पेट्रोलियम—यह काला-काला कीचड़-सा तरल होता है जो धरती में से निकलता है। प्राचीन युगों में वृक्षों और जन्तुओं के शरीर धरातल की उथल-पुथल और तलछटों के बैठने से चट्टानों के नीचे दब गये। इन जैव पदार्थों पर दबाव पड़ा और धरातल के नीचे दबे होने के कारण उनका तापमान बढ़ा। जब हम लकड़ी को गर्म करते हैं तो वह पसीजती है और उसमें से गैसें निकलती हैं। इसी तरह धरती के भीतर दबे हुए वृक्ष और जीवों के शरीर भी पसीजे और उनमें से गैस निकली और तरल स्रवित हुआ। इन जैव पदार्थों के ऊपर की चट्टानें जहाँ भुरभुरी और छिद्रमय थीं वहाँ इस प्रकार पसीजने से उत्पन्न हुई गैस और अधिकांश तरल हवा में उड़ गया। पर जहाँ ऊपर की चट्टानें भुरभुरी और छिद्रमय नहीं थीं, वहाँ वे उड़ नहीं पाई। धरती के भीतर इधर-उधर चली गई और सघन चट्टानों के नीचे जो रिक्त स्थान थे उनमें एकत्र हो गई। जैव पदार्थों से रिस-रिस कर एकत्र हुआ यही तरल हमारा पेट्रोलियम है। हम कुवाँ खोदकर इसी को धरती से बाहिर निकालते हैं। संसार की सबसे बड़ी पेट्रोलियम की खानें अमरीका में हैं। संसार का दो-तिहाई पेट्रोलियम अमरीका के कुओं से निकाला जाता है इसके पश्चात् यूरोप और अफगानिस्तान के बीच के क्षेत्र का नम्बर आता है। इसमें ईरान, ईराक, बाकू आदि के तेल क्षेत्र सम्मिलित हैं। भारत में पेट्रोलियम केवल आसाम में निकाला जाता है। जितना पेट्रोलियम भारत में निकलता है वह भारत की आवश्यकता से बहुत ही कम होता है। १९४९ में भारत में लगभग ३०-३५ हजार टन पेट्रोल निकाला गया था: जब कि भारत में पेट्रोल का वार्षिक खर्च तीस लाख टन के निकट है।

पेट्रोलियम धरती से काला कीचड़-सा निकलता है। इसमें मिट्टी-पत्थर भी मिला होता है। इसे कुओं से, सैकड़ों मील लम्बे नालों से बहाकर, शोधने के कारखानों में ले जाते हैं, थिराकर मिट्टी आदि अलग कर लेते हैं, और शेष को स्रावित करने के लिए एक पात्र में डाल देते हैं। पात्र को गरम करते हैं। थोड़ी गरमी पर उड़ने वाला अंश पहिले बाहिर आ जाता है, उसके पीछे अधिक गर्मी पर उड़नेवाला और उसके पीछे उससे भी अधिक गर्मी पर उड़नेवाला। अलग-अलग गर्मी पर उड़नेवाले अंशों को अलग-अलग इकट्ठा करके हम पेट्रोलियम को कितने ही अंशों में विभाजित कर लेते हैं। पेट्रोलियम से प्राप्त होने वाले मुख्य अंश हैं, हल्का पेट्रोल, मिट्टी का तेल, पेट्रोल, मशीनों के

३२७. अभ्रक या अबरक—यह वह चमकदार पदार्थ है जिसके कण रेत में पाये जाते हैं और जिसे भोडल भी कहते हैं। इसकी खानें बिहार राज्य में हैं जहाँ इसकी बड़ी-बड़ी शिलायें निकाली जाती हैं और कुशल कारीगर उनमें से पतली-पतली पत्तरें अलग करते हैं। बिहार के समान स्वच्छ अभ्रक संसार के और किसी भाग में नहीं पाई जाती। बिहार के इन अभ्रक प्रदेशों के कारीगर अपने काम में इतने कुशल हैं कि विदेशों से अभ्रक की शिलायें उनके पास इसलिए आती हैं कि वे अपनी कला-कुशलता से उनकी बारीक परतों को अलग कर दें। अभ्रक एक कठोर और लचकदार पदार्थ है जिसके आर-पार दिखाई देता है। १९४९ में भारत में २,७०,००० हन्डरवेट अभ्रक निकाली गई। इसका मूल्य लगभग पौने छः करोड़ रुपये था।

३२८. सोना—भारतवर्ष में सोना प्रधानतः मैसूर और हैदराबाद राज्यों में निकाला जाता है। मैसूर में सोने की खानें कोलर नामक स्थान पर हैं। ये खान संसार की सबसे गहरी खानों में से एक है। सन् १९४९ में १,६४,००० औंस सोना निकाला गया जिसका मूल्य लगभग पाँच करोड़ रुपए था। १९५१ में २,२६,४७५ औंस सोना निकाला गया।

३२९. चाँदी—वैसे तो देश में सोन भी देश की आवश्यकता से बहुत कम पाया जाता है किन्तु चाँदी तो लगभग नहीं के बराबर मिलती है। यह सोने के साथ मैसूर में पाई जाती है। १९४९ में ११,२७५ औंस चाँदी निकाली गई, जिसका मूल्य लगभग ५२,७०० रुपये था।

३३०. हीरा—१९४९ में १,६३२ कैरेट हीरा विन्ध्यप्रदेश में निकाला गया। इसका मूल्य २,७४,००० रुपये था। १९५१ में निकाले गये हीरे का भार १,०१२ कैरेट था।

३३१. ताँबा—ताँबे के खनिज बिहार और बम्बई में पाये जाते हैं। १९४९ में ३,२९,३०० टन खनिज १,१०,५३,००० रुपये का निकाला गया और ६,४०० टन धातु जिसका मूल्य लगभग १,२२,४०० रु० था बनाई गई।

३३२. सीसा, पारा, टिन और जस्त के खनिज भारत में नहीं पाये जाते। राजस्थान में जो कुछ खनिज मिलते हैं उनका परिमाण बहुत ही कम है। ये सब धातुएँ या इनके खनिज विदेशों से मँगाने पड़ते हैं।

३३३. अल्यूमीनियम—यह परिचित धातु है। साधारण मिट्टी में अल्यूमीनियम का महत्त्वपूर्ण अंश होता है। अल्यूमीनियम के खनिज को बाक्साइट कहते हैं। भारत में बाक्साइट उत्तम प्रकार का और काफी बड़े परिमाण में पाया जाता है। अल्यूमीनियम का यह खनिज देश के विभिन्न भागों में, विशेषतया बिहार, बम्बई, मध्य प्रदेश और मद्रास के राज्यों में पाया जाता है। यह खनिज अभी बड़े परिमाण में काम में नहीं लाया जाता है

इसमें से बेरिशियम धातु निकलती है। १६५१ में ५,२२५ हण्डरवेट बेरिल खानों से निकाला गया। यह तीनों धातुएँ, परमाणु शक्ति उत्पादन के काम में लाई जा सकती हैं। उनके देश से बाहिर भेजने पर प्रतिबन्ध लगा हुआ है।

३२७. **गन्धक**—रसायनिक उद्योग में गन्धक का तेजाब अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पदार्थ है। अधिकतर वस्तुओं की बनावट गन्धक में सम्मिलित नहीं होती, पर उनके निर्माण की विधि में गन्धक के तेजाब का उपयोग किया जाता है। भारत में शुद्ध गन्धक लगभग नहीं के बराबर पाया जाता है। भारत अपनी गन्धक की आवश्यकता-पूर्ति के लिए जापान, इटली और विशेषतया अमरीका के ऊपर निर्भर है। देश के भीतर गन्धक की खोज निरन्तर जारी है। गन्धक धातुओं के खनिजों में मिला हुआ पाया जाता है और उनको गरम करने से आक्साइड के रूप में अलग हो जाता है। गन्धक के आक्साइड, जो गैस होते हैं, गन्धक का तेजाब बनाने के काम में लाये जा सकते हैं। सिंदरी में जो खाद बनाने का नवीन कारखाना खोला गया है, वह जब पूर्ण रूप से काम करने लगेगा तो लगभग १,००० टन रासायनिक खाद प्रतिदिन बनायेगा। यह रासायनिक खाद अमोनियम सल्फेट होगी। १,००० अमोनियम सल्फेट में लगभग २५० टन गन्धक होगी। प्रतिदिन इतनी गन्धक कहाँ से प्राप्त की जायेगी? राजस्थान में एक कोमल पत्थर-सा खनिज होता है, इसे जिपसम कहते हैं। जिपसम कैलशियम धातु का सल्फेट होता है। कैलशियम सल्फेट कैलशियम धातु, गन्धक और आक्सीजन का संयुक्त है। २५० टन गन्धक प्रतिदिन प्राप्त करने के लिए १,८०० टन जिपसम प्रतिदिन राजस्थान से बिहार (सिंदरी) भेजा जायेगा।

३२८. **नमक** की खानें होती हैं और वे प्रायः उन भूभागों में पायी जाती हैं जहाँ पानी कम बरसता है। अब भारत में नमक की विशेष महत्त्वपूर्ण खानें नहीं हैं। भारतीय नमक सांभर झील तथा समुद्र के पानी को सुखाकर प्राप्त किया जाता है। १६४६ में ८ करोड़ रुपये के मूल्य का लगभग २० लाख टन नमक तैयार किया गया है, कुछ वर्ष पहिले भारत को अपने लिए नमक विदेशों से मँगाना पड़ता था, पर अब भारतीय नमक उद्योग इस स्थिति में आ गया है कि वह हजारों टन नमक बाहर भेज रहा है। नमक केवल खाने के काम में ही नहीं आता। वह रासायनिक उद्योग का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कच्चा माल है। वह कास्टिक सोडा जो साबुन बनाने तथा अन्य सैकड़ों प्रकार से रासायनिक प्रयोग-शालाओं और उद्योगों में काम में लाया जाता है, नमक से ही बनाया जाता है। कास्टिक सोडा बनाने के समय क्लोरीन गैस भी उत्पन्न होती है। यह गैस ब्लीचिंग पाउडर आदि बनाने के काम में आती है।

उपरिलिखित महत्त्वपूर्ण खनिजों के अतिरिक्त देश में भाँति-भाँति के पत्थर निकाले जाते हैं। यह भवन-निर्माण, सड़क-निर्माण और चूना बनाने के काम में आते हैं। तरह-तरह की मिट्टियाँ निकाली जाती हैं, जो मिट्टी के बर्तन, चीनी के बर्तन और काँच बनाने के

से आने लगी। मनुष्य की कारीगरी उस शक्ति के नियन्त्रण में रह गई। विशालकाय कारखानों, मिलों और फैक्ट्रियों का युग आ गया। वस्तुएँ बहुत बड़े परिमाण में, थोड़े समय में, एक स्थान पर बनने लगीं। लागत कम आई तो वे सस्ती बिकीं, और कम आय वाले व्यक्तियों के लिए भी उनका खरीदना और उपयोग करना सम्भव हो गया। भारत में भी यह मशीनी उद्योग आये। भारत का सबसे बड़ा मशीनी उद्योग यहाँ की रेलें हैं। भारतीय रेलों की लम्बाई पैंतीस हजार मील के लगभग है। भारतीय रेलें अन्य सब उद्योगों की अपेक्षा कहीं अधिक कोयले का उपयोग करती हैं।

३४३ बुनाई—बुनने का उद्योग भारत का सबसे बड़ा और सबसे महत्त्वपूर्ण उद्योग है। इस उद्योग के दो महत्त्वपूर्ण भाग हैं—पटसन-बुनाई और रुई-बुनाई। पटसन-बुनाई के कारखाने पटसन-उत्पादन के क्षेत्र के निकट कलकत्ते में और उसके आस-पास केन्द्रित हैं। रुई-बुनाई के कारखाने देश भर में फैले हुए हैं। बम्बई, अहमदाबाद, मद्रास, नागपुर, कानपुर, दिल्ली आदि उसके उल्लेखनीय केन्द्र हैं।

३४४ गन्ना, चीनी--गन्ने के रस से चीनी बनाने का उद्योग भी महत्त्वपूर्ण उद्योग है। चीनी के कारखाने गन्ना उत्पन्न करने वाले क्षेत्रों के बीच उत्तर प्रदेश और बिहार राज्य में हैं। दक्षिणी भारत में भी चीनी के कुछ कारखाने हैं। भारतीय गन्नों में चीनी की मात्रा क्यूबा और जावा के गन्नों से कम होती है। भारतीय कारखानों द्वारा बनाई गई चीनी क्यूबा और जावा की चीनी के समान सस्ती नहीं होती। हमारे कारखाने देश में उपयोग होने वाली सारी चीनी देश में ही बना लेते हैं और हमें वह विदेश से नहीं मँगानी पड़ती।

३४५ लौह उद्योग—देश के धातु उद्योगों में लौह उद्योग सबसे अधिक महत्त्व-पूर्ण है। लोहे के खनिज से लोहा निकालने के कारखाने मैसूर राज्य में भद्रावती और बिहार राज्य में जमशेदपुर में हैं। भद्रावती में खनिज से लोहा निकाला भर जाता है, पर जमशेदपुर में कच्चे लोहे से इस्पात और इस्पात से रेलें, गर्डर, चादर, रेलों के पहिये आदि अनेकों वस्तुएँ बनाई जाती हैं। जमशेदपुर का कारखाना जापान के कारखानों को छोड़कर एशिया में सबसे बड़ा और महत्त्वपूर्ण लोहे का कारखाना है।

३४६. विशाखापट्टम्—देश में आजकल कुछ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण नवीन कारखाने बन रहे हैं। कुछ पुराने कारखानों का विकास तेजी से नवीन क्षेत्रों में किया जा रहा है। पानी के जहाज बनाने का कारखाना विशाखापट्टम् (विजगापट्टन) में समुद्र के किनारे बनाया गया है। समुद्र-मार्ग से विदेशों से सामान मँगाने या विदेशों को सामान भेजने में बहुत किराया देना पड़ता है। यह रकम करोड़ों रुपयों में पहुँच जाती है। इस रकम को बचाने और देश को नाविक क्षेत्र में शक्तिशाली बनाने के लिए भारतीय जल-पोतों की आवश्यकता है। विशाखापट्टम् का कारखाना आठ-आठ हजार टन के कई

वाले ईंधनों तथा अन्य पदार्थों की बड़ी आवश्यकता है। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए भारत सरकार ने कुछ विदेशी पेट्रोलियम कम्पनियों से समझौते किये हैं। ये कम्पनियाँ

नाइट्रोजन-चक्र
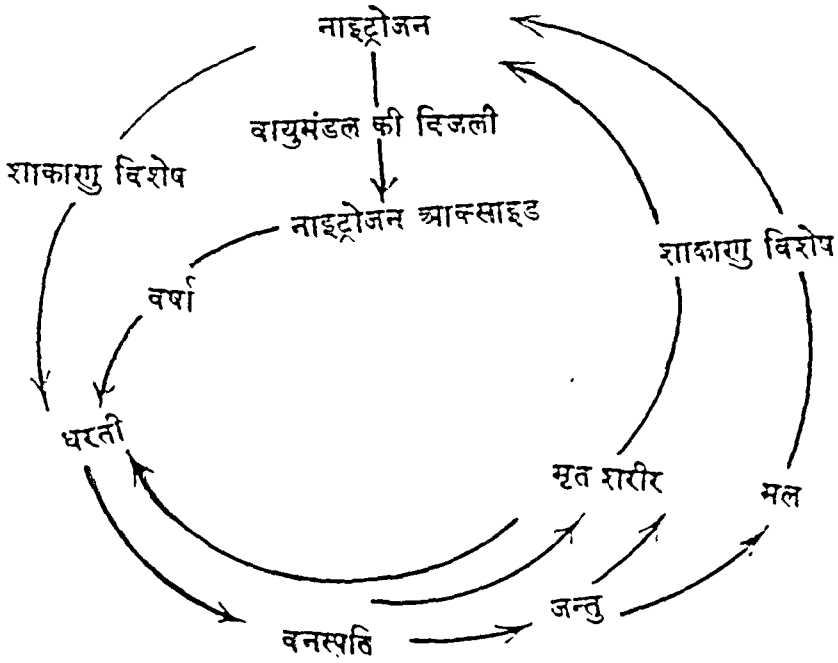
चित्र ५६.

अपने पेट्रोलियम साफ करने के कारखाने भारतीय तट पर बनायेंगी। विदेशों से पेट्रोलियम लाकर उसे यहाँ साफ करेंगी। भारत को जितने माल की आवश्यकता होगी उतना वह उनसे लेगा। जो सामान भारत नहीं खरीदेगा उसे वे भारत से बाहिर बेच सकेंगी। ऐसा एक कारखाना बम्बई के निकट ट्रोम्बे में बन चुका है।

२५२. विदेशी व्यापार—जब हम दुकानदार के पास माल खरीदने जाते हैं, तो दुकानदार हमें माल देता है और हम उसे माल के बदले सिक्का देते हैं। यदि हम भारत में किसी दुकानदार से माल खरीदें और बदले में उसे चीन या अमरीका का सिक्का दें तो वह स्वीकार नहीं करेगा। वह कहेगा आप जो सिक्का मुझे दे रहे हैं, वह इस देश में नहीं चलता। आप मुझे मेरे देश का सिक्का दीजिये। हम जिस देश में माल खरीदना चाहते हैं, उस देश का सिक्का हमारे पास होना आवश्यक है। यह सिक्के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में भाग लेने वाले बैंकों के पास मिलते हैं। जिस देश में विदेशी गाहक बहुत सा माल खरीदना चाहते हैं उस देश का सिक्का महँगा मिलता है, और जिस देश में विदेशी

अध्याय १७

नदी-घाटी योजनायें

३५३. विज्ञान का प्रभाव—विज्ञान ने मनुष्य की क्षमता में वृद्धि की। उसक सामर्थ्य को फैलाया। इस क्षमता-सामर्थ्य में से शुभ और अशुभ दोनों उदय हुए। अशु तो स्पष्ट ही मनुष्य के लिए हानिकारी है, पर जो शुभ था उसने भी मानव-समाज अत्यन्त जटिल समस्याओं की सृष्टि की।

विज्ञान ने चिकित्सा-क्षेत्र में उन्नति की। मनुष्य ने अपने शरीर के कुछ रहस् को समझा, अपने चारों ओर के वातावरण को समझा और शारीरिक रोगों पर बहुत ब अंश में विजय पाई। इसका फल यह हुआ कि मनुष्य की संख्या संसार में बढ़ने लगी मनुष्य की आयु की दीर्घता तो नहीं बढ़ी, पर मनुष्य की बहुत बड़ी संख्या प्रौढ़ अवस्था तक पहुँचने लगी। बालकों की मृत्यु-संख्या घट गई। विज्ञान के इस प्रभाव के अधी अविभाजित भारत की जो जनसंख्या १९०१ में लगभग २३ करोड़ थी वह विभाजि भारत में १९५१ में ही पैंतीस करोड़ हो गई। आज भारत की जो जनसंख्या है उसे व भारत के क्षेत्रफल से भाग दिया जाय, तो प्रति वर्ग मील पाँच सौ से अधिक व्यक्तियों क औसत पड़ता है। संयुक्त राज्य अमरीका में जनसंख्या की सघनता ५० व्यक्ति प्रति व मील से भी कम है। जनसंख्या की सघनता में भारत से जिन भूभागों की तुलना की ज सकती है, वे हैं—इंगलैंड, जापान, और यूरोप के कुछ अत्यन्त औद्योगिक क्षेत्र।

भारत के प्राचीन उद्योग-धंधे छिन्न-भिन्न हो गये। हाथ से काम करने वा शिल्पियों की निर्मित वस्तुएँ सस्तेपन में मशीनी वस्तुओं के सामने न ठहर सकी साधारण आवश्यकताओं की निर्मित वस्तुएँ विदेश से आने लगी। देश के शिल्पियों क अपना शिल्प छोड़कर जीविका के लिए खेती की शरण लेनी पड़ी। देश की कृषि-भू पर जनसंख्या का दबाव बढ़ गया।

इस बीच देश-भक्ति का जागरण हुआ। कितने ही देशानुरागी महापुरुषों भारत में वैज्ञानिक रीति से नवीन उद्योग संस्थापन का प्रयत्न किया। पिछले पचास व में होने वाले दोनों महान युद्धों ने इन उद्योगों की स्थापना में सहायता दी। काफी महत्व पूर्ण उद्योग देश में स्थापित भी हो गये, पर इससे भूमि के ऊपर जनसंख्या का भ विशेष हल्का नहीं हुआ। आज भी हमारे संगठित उद्योगों में कार्य करने वाले श्रमिकों क संख्या लगभग तीस लाख ही है। इन दिनों में देश की सम्पत्ति-निर्माण की क्षमता में अ वृद्धि हुई है, देश की आवश्यकतायें उससे कहीं आगे निकल गई हैं। जनता के जीवन क

घाटी योजना और उड़ीसा की महानदी योजना । इन अत्यन्त विशाल योजनाओं के अतिरिक्त बहुत सी अपेक्षाकृत छोटी-छोटी योजनायें प्रत्येक राज्य में कार्यान्वित की जा रही हैं । सिंचाई की इन छोटी योजनाओं में वर्षा का पानी रोक रखने के लिए सागर और तालाबों का निर्माण, पुराने तालाबों और बावड़ियों की सफाई, नये कुवें बनाना, ट्यूब-वेल लगाना और नहर तथा रजवहे खोदना सम्मिलित है ।

सिंचाई और शक्ति की इन योजनाओं पर सरकार १९५५-५६ तक ४५० करोड़ रुपये व्यय करेगी । इस व्यय के आधार पर ही यह महाकाय योजनायें पूरी हो सकेंगी, ऐसी आशा कमीशन को नहीं है । उसका सुझाव है कि जिन क्षेत्रों में होकर नहरें आदि जायें उन क्षेत्रों के निवासियों को संगठित किया जाये, जिससे कि वह अपना परिश्रम अर्पण करके अथवा अन्य प्रकार की सहायता देकर इन योजनाओं की पूर्ति में हाथ बँटा सकें ।

आजकल भारत में जितनी भूमि के लिए सिंचाई का प्रबन्ध है उसका क्षेत्रफल ४ करोड़ ८० लाख एकड़ है । यह हमारी सम्पूर्ण कृषि-भूमि का पाँचवाँ भाग है । इन योजनाओं के पूरे हो जाने के पश्चात १,६५,००,००० अतिरिक्त भूमि की सिंचाई की व्यवस्था हो जायेगी । सिंचाई की इस व्यवस्था, भूमि-सुधार, खादों के समुचित उपयोग, उत्तम बीजों के वितरण तथा अन्य सहायताओं के आधार पर योजना-कमीशन का अनुमान है कि १९५५-५६ के पश्चात् देश आज से लगभग ७२,००,००० टन अन्न अधिक उपजाने लगेगा । इनमें अधिकतर लक्ष्य मार्च १९५५ से पहले ही पूरे किये जा चुके हैं ।

यही नहीं, ४०० पौण्ड की इक्कीस लाख गाँठ पटसन, ३९६ पौण्ड की बारह लाख गाँठ कपास, ३,७५,००० टन तेलहन और ६,९०,००० टन शक्कर आज से अधिक उत्पन्न होने लगेगी ।

इस योजना के अन्तर्गत कुछ क्षेत्रों में खेतों पर मशीनों का भी उपयोग किया जायगा । इन मशीनों के उपयोग का अर्थ यह होगा कि आज खेतों पर काम करने वाले बहुत से मनुष्य बेकार हो जायँगे । इन लोगों को काम देने के लिए इन योजनाओं से प्राप्त बिजली की सहायता से उद्योग-धन्धों की स्थापना को प्रोत्साहित किया जायगा । कमीशन के मतानुसार ऐसे लोगों के लिए जीविका के साधन जुटाने की जिम्मेदारी सरकार की है । इन योजनाओं से १९,३५,००० किलोवाट बिजली प्राप्त होगी । यह देश के विभिन्न क्षेत्रों को औद्योगिक करने के काम में लाई जायेगी ।

३६०. **भारी मौलिक उद्योग**—वे उद्योग जो ऐसी वस्तुओं का निर्माण करते हैं, जिनकी सहायता से आगे चलकर बहुत सी वस्तुएँ बनाई जाती हैं भारी या मौलिक उद्योग कहलाते है । लोहा, इस्पात, अल्यूमीनियम, गन्धक का तेजाब, कास्टिक सोडा, अमोनिया (वायु की नाइट्रोजन से) बनाने के उद्योग भारी और मौलिक उद्योग हैं । जल पोत तथा रेल के इंजन आदि बनाने के उद्योग भी भारी उद्योगों में सम्मिलित किये जाते हैं ।

अध्याय १८

विज्ञान और आर्थिक व्यवस्था

३६४. कबीले—मनुष्य आरम्भ में छोटे-छोटे परिवारों में रहता था। वह कन्द, मूल और फल खाकर पशुओं का शिकार करके अपना जीवन यापन करता था। इन कार्यों में तेज दौड़ने की, जल्दी से पेड़ पर चढ़ जाने की और सामान्य शारीरिक शक्ति की आवश्यकता होती थी।

३६५. पेशी का बल—इसका फल यह होता था कि जो व्यक्ति सबसे अधिक पेशी की शक्ति रखता था वह परिवार या कबीले का नेता हो जाता था। शक्तिवान नवयुवक दुर्बल बूढ़े को युद्ध में पराजित करके नेतृत्व से गिरा देता था और स्वयं नेता बन जाता था।

३६६. पत्थर के हथियार—मनुष्य ने पत्थर के हथियार बनाये। इससे उसकी क्षमता बढ़ी। यह आवश्यक नहीं था कि जो पत्थर फेंककर अच्छा निशान लगा सकता हो, वह सबसे अधिक बलवान भी हो। पर पत्थर के हथियार की सहायता से कम बलवान व्यक्ति भी हस्त लाघव का सहारा लेकर अपने से बलवान व्यक्ति को हरा सकता था। कबीलों के नेता निर्वाचन की कसौटी अब शारीरिक बल नहीं हथियार चलाने का कौशल हो गया।

एक विस्तृत भूभाग में रहने वाले बहुत से कबीले पत्थर के हथियारों का उपयोग करते थे। फूल-फल के ऊपर, शिकार के ऊपर, पशुओं के ऊपर उनमें आपस में झगड़े होते थे। सबके हथियार एक से ही थे इसलिए कभी कोई जीत जाता था, कभी कोई। सबका पलड़ा लगभग बराबर रहता था और सबका निर्वाह बराबरी से होता जाता था। इसी बीच में एक कबीले को वृक्षों की शाखाओं की लचक का पता चल गया और उनके किसी बुद्धिमान व्यक्ति ने कमान बना ली। धनुर्धारिता की नींव पड़ गई। पत्थर के हथियारों के उपयोग के लिए जितनी शारीरिक शक्ति की आवश्यकता थी, उससे भी कम शारीरिक शक्ति की आवश्यकता उत्तम धनुर्धारी होने के लिए थी। तीर का निशाना पत्थर के निशाने की अपेक्षा सरलता से लगाया जा सकता था। जब धनुर्धारी कबीले और दूसरे कबीले में झगड़ा हुआ तो धनुर्धारी कबीला जीत गया। पराजित कबीले के मनुष्य पकड़ लिये गये और दास बना लिये गये। धनुष के आविष्कार से मनुष्य समाज में स्वामी और सेवक की सृष्टि हुई।

३६७. लोहा—धनुष का उपयोग दूर-दूर तक फैल गया। समय बीतता गया। इस बीच में एक कबीले को लोहे का पता लग गया। उसने लोहे की वस्तुएँ बनाना भी

हो जाते थे। उनकी सफलता के परिणामस्वरूप राजवंश का कोई दूसरा पुरुष सिंहासन पर बैठ जाता था।

राज्य की सीमा के भीतर रहने वाले सभी मनुष्यों पर और उसके भीतर स्थित सारी सम्पत्ति पर उनका अधिकार था। राज्य की सर्वोत्तम वस्तुएँ उसके लिए थीं। कवि उसकी प्रशंसा में कविता रचते थे, गायक उसकी सभा में गाते थे, और दूसरे कलाकार भी भूपति का अर्चन कर अपनी कला को धन्य बनाते थे। इस विषय में राजा का प्रतिद्वन्द्वी एक और था और वह था ईश्वर।

राज्य के भीतर जो कुछ था वह सब राजा का साधन था। राजा जिस प्रकार चाहता था उसका उपयोग करता था। अधिकतर राजाओं के जीवन का प्रधान लक्ष्य था ऐश्वर्य-उपार्जन; कुछ ऐसा कर जाना कि जन जन उन्हें युगों तक याद रखें। वे मर जाने के पश्चात् भी अमर बने रहें। इस भावना से समाधियों और मकबरों की उत्पत्ति हुई। लाखों मनुष्य राजा की इच्छा को पूरा करने के लिए काम में जुट गये। मिश्र में पिरामिडों का निर्माण हुआ। आगरे में ताजमहल बना। राजा कीर्ति पीछे छोड़ जाने के लोभ में दिग्विजय को निकल पड़े। लाखों निरपराध और असहाय मनुष्यों के रक्त से पृथ्वी रंगी गई और इतिहास को सिकन्दर, चंगेज, तैमूर, नादिरशाह और नेपोलियन जैसे नामों की प्राप्ति हुई। विज्ञान आगे नहीं बढ़ा तो मनुष्य की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्थायें भी सामंती व्यवस्था की सीमा के भीतर ही चक्कर काटती रहीं। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्थाओं के आगे बढ़ने के लिए यह आवश्यक था कि व्यक्ति की क्षमता बढ़े और वह शासक शक्ति को अपनी सत्ता मानने के लिए विवश करे।

३६६. बारूद—इस दिशा में एक डग चीन में रखा गया। वह डग था बारूद का आविष्कार। बारूद की सहायता से अत्यन्त दुर्बल सत्ताहीन व्यक्ति भी बड़े से बड़े सामर्थ्यवान व्यक्ति को हानि पहुँचा सकता था। इसका फल यह हुआ कि चीन में व्यक्ति का उस काल में अपेक्षाकृत महत्त्व बढ़ गया। पर चीन से बाहिर इसका प्रभाव बहुत कम पड़ा। जो पड़ा वह यह कि राजाओं को परस्पर लड़ने-भिड़ने और एक दूसरे की सेना का संहार करने के लिए एक नवीन सामर्थ्य प्राप्त हो गई। बारूद के उपयोग ने तोपों को जन्म दिया। जो लोग बारूद का उपयोग नहीं जानते थे, वे अत्यन्त साहसी और बलवान होने पर भी इस नवीन आयुध के सामने नहीं ठहर सके। बारूद ने संसार के राज्यों का नक्शा ही बदल दिया।

३७०. मशीनें—बारूद ने मनुष्य को मुख्यतः मौलिक शक्ति दी। उसने मनुष्य की उत्पादक और निर्माण क्षमता को विकृत नहीं किया। इस कारण मनुष्य की आर्थिक व्यवस्था पर उसका प्रभाव राज्यों की सीमा में हेर-फेर करने से आगे नहीं बढ़ा। सत्रहवीं सदी के आस-पास यूरोप में ज्ञान के प्रति एक नवीन उत्सुकता जागी। आरम्भ में कुछ ही व्यक्ति

राज-काज उसे मोटे तौर से अपनी सलाह मानने के लिए विवश किया था। यह सभा जो राजा को सलाह देने को बनी, पार्लियामेंट कहलाई। इंग्लैण्ड की यह पार्लियामेंट आज भी है, पर आज वह इंग्लैण्ड की सच्ची शासक है। इंग्लैण्ड के राजा-रानी पार्लियामेंट की इच्छा के विरुद्ध नहीं जा सकते। पर उन दिनों पार्लियामेंट की शक्ति इतनी अधिक नहीं थी।

३७१. पूँजी-व्यवस्था—सामन्तों के पास बड़ी-बड़ी जागीरें थीं, किले थे, खेत थे और किसान थे। वे सामन्त देश भर में बिखरे हुए थे। नगरों में विशेषतया लन्दन में व्यापारी रहते थे। यह देश-विदेशों में व्यापार करते थे और धनवान थे। अवसर आता था तो सामन्तों के विरुद्ध वे धन से राजा की सहायता भी करते थे। मशीनी कारखाने इन धनी सौदागरों ने बनाने आरम्भ किये। फलस्वरूप इंग्लैण्ड में भी हाथ से चलने वाले धन्धे नष्ट हो गये, और कारीगरों को विवश होकर जीविका कमाने के लिए कारखानों में मजूरी करने के लिए आना पड़ा। जैसे-जैसे कारखानों का विस्तार बढ़ा मजूरों की संख्या भी बढ़ी। इन कारखानों के दो पक्ष हुए—एक था पूँजी जो कारखाने का स्वामी लगाता था और दूसरा था श्रम, जो मजूरों के समूह से आता था। यह उद्योगों का आरम्भिक काल था। श्रमिक बिल्कुल पूँजीपति की मुट्ठी में था। पूँजीपति मजूरों को कम से कम मजूरी देता था और अधिक से अधिक काम लेता था।

३७२. सामन्तों का पतन—पूँजीपतियों को कारखानों से बहुत अधिक लाभ हुआ। वे बहुत धनवान हो गये। वे बहुत रुपया टैक्स में देते थे, और हजारों मजूरों पर उनका पूरा अधिकार था। उन्होंने पार्लियामेंट में सम्मिलित होने का अधिकार माँगा, और यह अधिकार उन्होंने जीत भी लिया। इस प्रकार राज्य-शक्ति राजा और सामन्तों तक ही सीमित नहीं रही, वह व्यापारियों और कारखाने के स्वामियों को भी प्राप्त हो गई। क्योंकि देश में अर्थोपार्जन का बहुत बड़ा भाग पूँजीपतियों के हाथ में चला गया, राज्य का शासन अधिकांश उन्हीं के दिये करों से चलने लगा, इसलिए उनकी राजनीतिक सत्ता बढ़ती गई और सामन्तों की राजनीतिक सत्ता क्षीण होती गई। व्यापारियों की यह शक्ति इतनी बढ़ी कि देश का शासन बिल्कुल उनके हाथ में आ गया। सामन्तों की सभा 'हाउस ऑफ़ लार्ड्स' को राजकोष में से धन व्यय करने के विषय में कोई अधिकार नहीं रहा। वे सलाह-कार मात्र रह गये।

इस काल में इंग्लैण्ड की समाज-व्यवस्था की जहाँ एक ओर सामन्तों में शक्ति क्षीण हो रही थी, वहाँ दूसरी ओर एक नवीन सामाजिक राजनीतिक शक्ति का निर्माण हो रहा था। यह नवीन शक्ति मजूरों या श्रमिकों की शक्ति थी। इंग्लैण्ड का राजनीतिक प्रभाव विदेशों में बहुत व्यापक था, इसलिए वहाँ का बना माल विदेशों में बहुत बिकता था। कारखाने वालों को अवकाश न था। पूँजीपति अंधाधुन्ध कमाते थे तो मजूरों को मजूरी भी अन्य पुराने कारबारों की अपेक्षा अधिक मिल जाती थी। इसका फल यह हुआ कि

इंग्लैण्ड और पश्चिमी यूरोप में सामन्ती व्यवस्था समाप्तप्राय हो चुकी थी। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्थाओं में पूँजी-व्यवस्था का शासन था और उसके विरोधी श्रमिक संगठन धीरे-धीरे पीड़ा और अनुभव के मार्ग से शक्ति इकट्ठी कर रहे थे। मनुष्य को धीरे-धीरे यह अनुभव होता जा रहा था कि वस्तुओं की उत्पादक मशीनें कम और श्रमिक अधिक हैं।

इस संघर्ष में से एक प्रश्न उठा। मशीनों का समाज में क्या स्थान है? क्या पूँजीपति मशीनों के पूर्णतया स्वामी हैं। मशीन के निर्माण में जो प्रतिभा, आविष्कार-शक्ति और परिश्रम लगा है क्या उसका मूल्य उसने चुका दिया है। निस्सन्देह हो नहीं। मशीनें सैकड़ों छोटे-बड़े आविष्कारकों की प्रतिभा के योग से अपने वर्तमान रूप को प्राप्त हुई हैं। पूँजीपति ने जो मूल्य मशीन बनाने वाले को दिया है वह केवल पुर्जों के ढालने, सँवारने, जोड़ने आदि का ही मूल्य है। इस प्रकार नैतिक दृष्टि से मशीन को खरीदकर कोई व्यक्ति उसकी ऐतिहासिक सम्पूर्णता का स्वामी नहीं हो सकता। मशीन के स्वामियों ने आविष्कारकों की समाज-सेवी प्रतिभा का मूल्य न चुकाया है, न वे चुका सकते हैं। नैतिक विचारणा से मशीनें एक व्यक्ति की नहीं हो सकतीं। वे सम्पूर्ण मानव समाज की हैं।

एक प्रश्न और था कि पूँजी कैसे इकट्ठी होती है? एक पूँजीपति एक वस्तु के निर्माण में दो आने कच्चे माल और मशीनी खर्च के व्यय करता है, तीन आने श्रमिक को देता है। वह पाँच आने में वस्तु बनाकर बीस आने में ग्राहक को देता है। उसका ध्येय हो जाता है श्रमिक को कम से कम मजूरी देना और ग्राहक से अधिक से अधिक मूल्य वसूल करना। यदि पूँजीपति ग्राहक से प्राप्त किये मूल्य में से जो भाग श्रमिक का निकलता है वह ईमानदारी से उसे दे दे, तो पूँजीपति के पास अधिकाधिक पूँजी इकट्ठी न होती जाये। पूँजी के निर्माण में इस प्रकार जाने-अनजाने श्रमिक तथा समाज के साथ बरती जाने वाली बेईमानी का बड़ा हाथ है।

श्रमिक संगठन जोर पकड़ते गये। मशीनें व्यक्ति की नहीं समाज की सम्पत्ति हैं यह विचार व्यापक होता गया। श्रमिकों के संगठनों ने राजनीति में भाग लेना आरम्भ किया, और इंग्लैण्ड में पार्लियामेंट में चुने जाने तथा उसके चुनाव में वोट देने का अधिकार प्रत्येक बालिग व्यक्ति को प्राप्त हो गया। फल यह हुआ कि पूँजीपतियों पर टैक्स बढ़ गये। उनसे धन लेकर सरकार उसे विभिन्न समाज-सेवाओं पर व्यय करने लगी। इस प्रकार मशीनों की अधिक उत्पादन-शक्ति से देश के सम्पूर्ण समाज को लाभ पहुँचाने का प्रयत्न किया गया।

२७४. राजवंशों का पतन—यह प्रश्न केवल पूँजीपतियों और श्रमिकों का ही नहीं था। भिन्न देशों में स्थितियाँ कुछ भिन्न-भिन्न थीं। छोटे [illegible] विनष्ट हो

किया जाता है जो निर्विवाद रूप से संसार के सभी देशों के निवासियों के जीवन से ऊँचे स्तर पर है।

३७७. ब्रिटेन—तीसरी व्यवस्था ब्रिटेन या इंग्लैण्ड की है। इंग्लैण्ड में श्रमिक-संगठन एक शक्तिमान राजनीतिक दल बन गया है। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् वह दो बार चुनावों में विजयी हुआ और उसने इंग्लैण्ड में सरकार बनाई। वह दल पूंजीवाद के भीतर इंग्लैण्ड की जनता के कष्टों का समाधान नहीं पाता। वह अपने मत को साम्यवाद नहीं, समाजवाद कहता है। वह भी चाहता है कि उत्पादन के समस्त साधनों पर सरकार का अधिकार हो और सरकार उनकी व्यवस्था और उनका संचालन देश के समाज की भलाई के लिए करे। इंग्लैण्ड की श्रमिक सरकार ने इंग्लैण्ड के प्रधान उद्योगों और चिकित्सा-व्यवसाय को राष्ट्रीय सम्पत्ति बना दिया है। रूस की क्रान्ति में जिन लोगों से उनकी सम्पत्ति ली गई उन्हें बदले में कुछ नहीं दिया गया। पर इंग्लैण्ड में जिन लोगों से सम्पत्ति या अधिकार छीने गये उन्हें मुआवज़ा दिया गया।

३७८. भारत—भारत में सामन्ती व्यवस्था अभी तक चली आ रही थी। देशी राजाओं के अधिकारों के अन्त और जमींदारी-उन्मूलन से उसकी समाप्ति हो रही है। देश की अधिकांश जनता कृषि के सहारे रहती है। पूंजी व्यवस्था का प्रखर रूप यहां अभी प्रकट नहीं हो पाया है। भारत में भी जमींदारों से अधिकार छीने गये हैं तो उन्हें मुआवज़ा दिया गया है। राजनीतिक शक्ति के उपयोग के अतिरिक्त सम्पत्ति के समान-वितरण के लिए भारत में एक दूसरा उपाय भी काम में लाया जा रहा है। वह है धनियों के हृदय को छूकर स्वयं उनसे ही उनकी सम्पत्ति का दान निर्धनों के लिए प्राप्त करना। भूमि-दान आन्दोलन इसी प्रकार का आन्दोलन है। मनुष्य अपने पास उतना ही रखे जितने की उसे आवश्यकता हो, शेष वह उन लोगों को दे दे जिनके पास अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए यथेष्ट नहीं है।

३७९. आशा—विज्ञान के उपयोग ने मनुष्य की आर्थिक व्यवस्था की काया-पलट करदी है। राजाओं की शक्ति क्षीण हो गई है और पूंजीपतियों की हो रही है। मनुष्य मनुष्य के बीच समानता की भावना बढ़ रही है। भौगोलिक व्यवधान मिट रहे हैं। संसार सिकुड़ गया है और सारी मानव-जाति एक परिवार बनने जा रही है। मनुष्य अनुभव से सीख रहा है देश की सीमाओं में बंधी पूंजी-व्यवस्था की भयानकता उसे विदित हो गई है। वह राष्ट्रों की सीमा लांघकर अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के युग में पदार्पण कर रहा है। उसकी कठिनाइयां अभी समाप्त नहीं हुई हैं, पर भविष्य में विज्ञान की देनाएं तब मनुष्य के जीवन को अत्यन्त सुविधापूर्ण बना देंगी इसमें सन्देह नहीं।